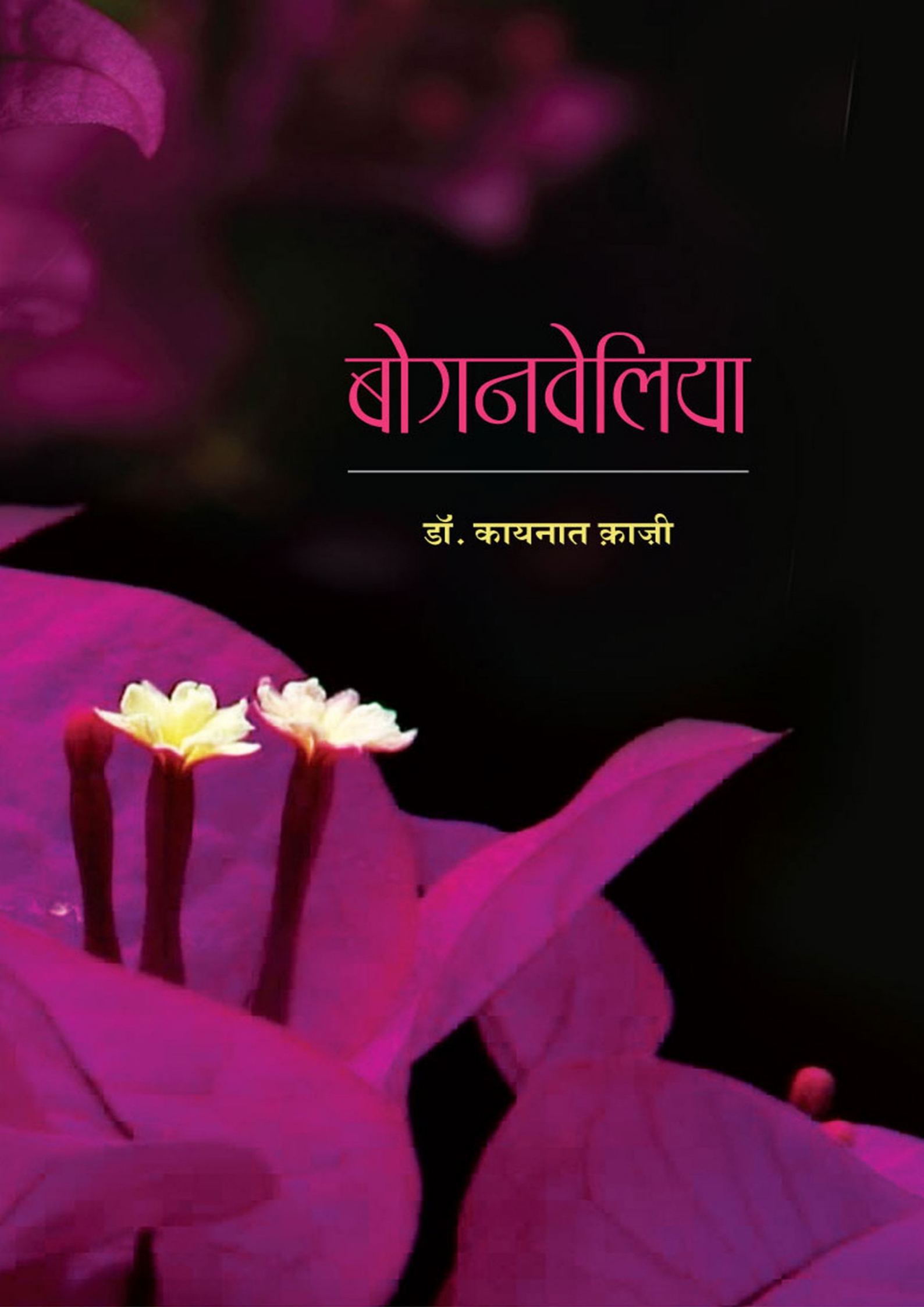

बोगनवेलिया

डॉ. कायनात क़ाज़ी

बोगनवेलिया
(कहानी-संग्रह)

बोगनवेलिया

डॉ. कायनात क़ाज़ी

हिन्द युग्म
hindyugm.com
BLUE

ISBN: 978-93-84419-59-2

प्रकाशक:
हिन्द-युग्म
201 बी, पॉकेट ए, मयूर विहार फ़ेस-2, दिल्ली-110091
मो.- 9873734046, 9968755908

कला-निर्देशन: विजेंद्र एस विज

पहला संस्करण: 2017

© डॉ. कायनात क़ाज़ी

Boganveliya
(A collection of short stories by Dr. Kaynat Kazi)

Published By
Hind Yugm
201 B, Pocket A, Mayur Vihar Phase 2, Delhi-110091
Mob: 9873734046, 9968755908
Email: sampadak@hindyugm.com
Website: www.hindyugm.com

First Edition: 2017

भूमिका

कहानियां लिखी नहीं जातीं, बल्कि बुनी जाती हैं। लेकिन इस 'बुनकारी' में न तो क्रोशिया मददगार साबित होता है और न ही ऊन की सलाइयां। कहानियां तो सिर्फ़ आंसुओं और मुस्कराहटों के शहाबी रंग से लिखी जाती हैं। शायद यही सबब है कि रंगों से खेलते-खेलते, तरतीब और तहज़ीब का ख़्याल रखते-रखते अक्सर कहानियां बुनने वालों की ज़िंदगी बेनूर हो जाती है। लेकिन यह तो कहानी और कहानीकार के नसीब की वह जंग है जो दुनिया क़ायम होने के साथ-साथ शुरू हुई थी और जब तक दुनिया एक आग का गोला बनकर समंदर में डूब नहीं जाएगी, तब तक यही कालचक्र चलता रहेगा। कायनात यानी सृष्टि के सबसे बड़े कहानीकार ने दुनिया बनाते वक़्त शायद ये सोचा भी न होगा कि दुनिया रंगों के समंदर में ऐसी डूबेगी कि अपने कहानीकार को भी भूल जाने की कोशिश करेगी। 'बोगनवेलिया' छोटी आरज़ुओं का बड़ा पेड़ है। यह न तो बरगद है और न ही पीपल। यह उन छोटे-छोटे परिंदों का जहान है जो आंगन को अपना पार्क, बच्चों को अपना दोस्त और बारिश की बूंदाबांदी को क़ुदरत का छिड़कान समझते हैं। कहानियों में ख़ास रुचि रखने वाले जानते हैं कि कहानीकार को अपना एक किरदार बचाते हुए कई-कई बार मरना पड़ता है। कविता और कहानी में सबसे बड़ा फ़र्क़ यह होता है कि कविता कभी-कभी ख़त्म हो जाती है, लेकिन पढ़ने या सुनने वाले को कुछ हासिल नहीं होता। जबकि एक अच्छी कहानी लिखने वाले से ज़्यादा पढ़ने वाले में ऊर्जा भर देती है।

डॉ. कायनात क़ाज़ी की कहानियां उनकी उम्र से लग्गा खाती हैं। तजुर्बे की धूप सबके बाल सफ़ेद नहीं कर पाती है, लेकिन बहुतों को तजुर्बेकार ज़रूर बना देती है। इस

कहानी संग्रह में 'बेगम नवाज़िश अली' से लेकर 'अनुराग' तक के किरदार आपको अपने इर्द-गिर्द के पड़ोसी से लगेंगे। लेकिन उनसे आपका पूरा तआरुफ़ तब तक नहीं हो पाएगा, जब तक आप उन्हें मनोविज्ञान के चश्मे से देखने और समझने की कोशिश नहीं करेंगे। 'अरविंद की सुधा' में क़ाज़ी ने जो माहौल तैयार किया है वह उनकी कल्पनाशीलता की एक पहचान है। कहानियों में हिंदी-उर्दू ज़बानें मिलकर एक नई लज़्ज़त की तरफ़ इशारा करती हैं। इनके बुने हुए किरदार हिंदुस्तान के गांवों और क़स्बों में अवध रंग का दोशाला ओढ़े हुए दिखाई देते हैं। फ़ोटोग्राफ़ी के शौक़ की वजह से कायनात ने कम उम्र में ही शब्दों की साधना का हुनर जान लिया है। शायरी हो या अफ़साना निगारी, अगर इन दोनों विधाओं के साहित्यकार में शब्दों के सही चयन और उनके इस्तेमाल का सलीक़ा नहीं है तो उसकी आगे की राहें ख़ुशगवार नहीं होतीं। डॉ. कायनात क़ाज़ी की कहानियों में फ़िलहाल तो इस सलिक़ेमंदी की किरणें दिखाई दे रही हैं।

मुनव्वर राणा
लखनऊ

लेखकीय

ज़िंदगी का एक पड़ाव पूरा कर लेने के बाद आज मैं जब पीछे मुड़कर देखती हूं तो पाती हूं कि मेरी रचनात्मकता को पंख देने में अब्बू और दादा का बड़ा योगदान रहा है। अब्बू ने फ़ोटोग्राफी की ललक पैदा की तो दादा ने क़िस्सागोई का चस्का लगाया। अब्बू ने फ़ोटोग्राफर बनाया तो दादा ने कहानीकार। अब्बू को फ़ोटोग्राफी का बड़ा शौक़ था। यूं कहें कि वे शौकिया फ़ोटोग्राफर थे। अब्बू का अपना व्यवसाय था। इस सिलसिले में वे अक्सर शहर से बाहर जाया करते थे। घर में सबसे छोटी और लाडली होने के नाते मैं भी उनके साथ हो लिया करती। अब्बू सफ़र में अपने साथ कैमरा ज़रूर ले जाते और कुछ वक़्त निकाल कर फ़ोटोग्राफी करते। अब्बू के साथ मैं भी कैमरे पर हाथ आज़माने लगी। कैमरे के प्रति मेरे प्रेम को देखकर अब्बू मुझे फ़ोटोग्राफी की बारीकियां भी समझाने लगे। फिर एक दिन अब्बू ने मुझे कैमरा भी गिफ़्ट कर दिया। आज मैं कैमरा लेकर देश-विदेश में क़रीब एक लाख किलोमीटर की यात्रा कर चुकी हूं और 50 हजार फ़ोटोग्राफ्स का कलेक्शन भी जुटा चुकी हूं।

मां नौकरी में थीं। इस वजह से बचपन में ज्यादा वक़्त दादा के साथ बीतता था। दादी बंटवारे के समय चाचा के साथ पाकिस्तान चली गई थी। इसलिए मां नौकरी में और अब्बू बिजनेस में व्यस्त रहते थे। ऐसे में दादा ही थे, जिनके पास हमारे लिए वक़्त रहता था। लिहाजा, स्कूल से घर आने के बाद दादा ही लाड़-प्यार करते। शाम को दादा हमें कहानियां सुनाते। उनकी क़िस्सागोई गज़ब की थी। मुझे उनसे कहानियां सुनने की ऐसी लत लग गई कि स्कूल से आकर बस्ता फेकते ही दादा से कहानियां सुनाने की ज़िद करने

लगती। दादा को रात में बिस्तर पर रस लेकर तसल्ली से कहानियां सुनाने में बड़ा मज़ा आता, इसलिए वे दिन में यह कहकर बहाना बना दिया करते कि दिन में कहानी सुनाने से मुसाफ़िर रास्ता भटक जाता है और हमारा बालमन इस पर यक़ीन भी कर लेता। मुसाफ़िर को परेशानी नहीं होनी चाहिए, यह सोचकर हम भावुक होकर दादा की बात मान लेते। दादा की क़िस्सागोई ने कहानियों में ऐसी दिलचस्पी पैदा की कि छठीं-सातवीं में ही मैं कहानी लिखने लगी। अब्बू मेरे लिए 'चंदा मामा' और 'बाल हंस' ख़रीदकर लाते। मैं जल्दी-से-जल्दी उसकी सारी कहानियों को पढ़ लेना चाहती। 11वीं में थी तो किसी के सुझाव पर अपनी एक कहानी आकाशवाणी के आगरा केंद्र पर पोस्ट कर दी। एक दिन कहानी पढ़ने का बुलावा भी आ गया। फिर मेरी कहानियां नियमित रूप से आकाशवाणी पर प्रसारित होने लगी। यह सिलसिला एमए की पढ़ाई तक चला। आगरा छूटा तो आकाशवाणी भी छूट गया। मैं आकाशवाणी पर अपनी कहानियों का पाठ करती, बिलकुल दादा जी के अंदाज़ में। धीरे-धीरे दादा की क़िस्सागोई की नक़ल करने लगी।

धीरे-धीरे मैं 'बड़ी' होती गई तो मेरी कहानियों भी 'बड़ी' होती गईं। पहले मैं लघु कहानियां लिखा करती थी। इन कहानियों का विषय दया, करुणा, दोस्ती और परिवार आदि हुआ करता था। बाद में 'लघु' कहानियां 'दीर्घ' में बदल गईं और विषय सिमट कर 'प्रेम' तक सीमित हो गया। करियर और ज़िंदगी की भागदौड़ में 2007 से कहानियां लिखने का सिलसिला तकरीबन बंद-सा हो गया था। कुछ साल पहले कहानियां लिखने की इच्छा फिर बलवती हो गई। पुरानी कहानियों को ढूढ़ना शुरू किया तो चंद ही मिल पाई। बाक़ी वक़्त के झंझावतों में ग़ायब हो कर रह गईं। कुछ कहानियां तो आकाशवाणी के आर्काइव में ही दबकर रह गई थीं। अक्सर मैं कहानियां एक ही सांस में लिख लेती हूं। कॉलेज के दिनों में जिस पन्ने पर कहानी लिखकर आकाशवाणी ले जाती, रिकॉर्डिंग के बाद वह वहीं जमा हो जाती। तब ज़ेहन में ही नहीं था कि कभी मेरी कहानियों का संग्रह भी प्रकाशित होगा। लिहाजा साल भर पहले कुछ कहानियों को इकट्ठा किया। इनमें से कुछ अच्छी लगीं, उन्हें फिर से रीराइट किया। कुछ नई लिखी। इस तरह से 'बोगनवेलिया' का जन्म हुआ।

'बोगनवेलिया' प्रेम की कहानियों का एक गुलदस्ता है। मेरी इन कहानियों में आप को प्रेम के अलग-अलग रंग देखने को मिलेंगे। हर कहानी एक-दूसरे अलग है और प्रेम को एक नए रूप में परिभाषित करती है। प्रेम केवल किसी को पा लेना भर नहीं होता है। प्रेम तो त्याग है। किसी के लिए जीत कर हार जाना है। प्यार तो वह एहसास है, जिसके सहारे एक ज़िंदगी गुज़ार दी जाती है। उम्मीद है प्रेम के अलग-अलग रूपो को परिभाषित करती मेरी कहानियां आप को ज़रूर पसंद आएंगी।

डॉ. कायनात क़ाज़ी

कहानी-क्रम

बोगनविला
ठीकरे की मांग
अरविंद की सुधा
तुम्हारे लिए
प्यासा
आख़री साइन
आसरा
एक थी रुमाना
अनुराग

बोगनविला

नफ़ासत से सजा हुआ ड्राइंग रूम लोगों से खचा-खच भरा हुआ है। एक के बाद एक लोग आए चले जा रहे हैं। जो भी यह ख़बर सुन रहा है, वह 'बोगनविला' की तरफ़ दौड़ा चला जा रहा है। कुछ लोग बाहर गार्डेन में टहल रहे हैं। इस घर की एक-एक चीज़ बेगम नवाज़िश अली की सलीक़ेमंदी और नफ़ासत की मिसाल पेश कर रही थी। यह घर क्या था? जन्नत था, जन्नत! बेगम साहिबा ने इस घर को बड़े अरमानों से तिनका-तिनका जोड़ कर बनाया था।

बेगम साहिबा को घूमने का बड़ा शौक़ था। वह जहां भी जातीं, वहां से नायाब क़िस्म का समान अपने इस छोटे से घर के लिए ज़रूर लेकर आतीं। कश्मीरी कालीन, शानदार चीनी मिट्टी की क्रॉकरी, उम्दा क़िस्म के पर्दे और चमचमाते झाड़फानूस। सब कुछ बेगम

साहिबा के उम्दा टेस्ट को बयान करते हुए। क़रीने से सजी दीवारें, जिन पर मौसम के हिसाब से कभी मोटे तो कभी हल्के जालीदार पर्दे टांगे जाते। दीवारों पर लगे ख़ूबसूरत फ्रेम्स में जड़ी उनके बच्चों और नाती पोतों की तस्वीरें। और इनके बीच बेगम साहिबा और नवाब साहब का आदमक़द पोर्ट्रेट, इस घर को मुकम्मल बना देता। बेगम साहिबा को सूनी दीवारें ज़रा भी नहीं भाती हैं। दीवारों पर फ़ोटो फ्रेम्स के अलावा बड़े-बड़े आइने, पेंटिंग्स, वॉल डेकॉर या टेक्सचर इन में से कुछ तो होना ही चाहिए। ख़ालीपन की गुंजाइश न तो दीवारों पर है और न ही इस घर में। हर कमरे का लुक एक दूसरे से अलग। हर कमरे में कोई नया रंग, कोई नया शेड। पहले से एक दम जुदा। पर्दों से मैचिंग करते कुशन और नफ़ीस क़िस्म के टेबल लैम्प।

किचन से लेकर बाथरूम तक हर जगह नफ़ासत टपकती-सी मालूम होती है। डायनिंग हॉल में बड़ी-सी डायनिंग टेबल और साथ ही रोज़वुड का बड़ा-सा क्रॉकरी कैबिनेट, जिसमें देश-विदेश से लाई हुई क़ीमती क्रॉकरी सजी होती है। बाथरूम में टाइल्स से लेकर टॉवेल और बाथ गाउन तक मैचिंग के। किस जगह को कैसी रोशनी चाहिए? इसके लिए भी अलग-अलग तरह की लाइट्स का इंतज़ाम। जहां ड्रॉईंग रूम में बेल्जियम से आया ख़ूबसूरत शेंडेलियर इसे जगमगा देता है, तो वहीं डायनिंग रूम के लिए सॉफ्ट डिफ्यूज़्ड लाइट। डिफ्यूज़्ड लाइट से निकलने वाली नर्म-मुलायम हल्की रोशनी में नहाया हुआ डायनिंग रूम किसी भी मेहमान को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता। शाम होते ही लेमन ग्रास की महक पूरे घर में फैल जाती है। बेगम साहिबा की सख़्त हिदायत है, घर में कोई भी मार्केट में बिकता हुआ फालतू रूम फ्रेशनर नहीं आएगा। आएंगे तो बस अरोमा ऑयल्स, जिनकी कुछ बूंदें पानी में डाल कर रख दी जातीं और नीचे टी-लाइट कैंडल जला दी जाती। ऑयल जब गर्म होता है तो डिफ्यूज़ होकर हवा में घुल जाता।

घर का फर्नीचर ख़ास जोधपुर से मंगवाया गया है। बेगम साहिबा को एंटीक फर्नीचर बहुत पसंद है। विक्टोरियन स्टॉइल के ऊंचे-ऊंचे बेड, जिनके ऊपर झालरदार छत जैसी कैनोपी बनी हो और उनसे महीन जालीदार पर्दे लटकते हों। सब कुछ पर्फेक्ट! वैसे तो इस घर में रहने वाली सिर्फ़ एक हैं बेगम साहिबा, पर घर में नौकरों की पूरी की पूरी फ़ौज तैनात है। हर काम के लिए एक अलग नौकर। बेगम साहिबा के पास एक अदद ईरानी बिल्ली भी है, उन्हीं की तरह नफ़ीस और शाहाना अंदाज़ वाली। बड़े-बड़े बालों वाली ख़ूबसूरत मासूम-सी बिल्ली जिसका नाम है-शैरी। बेगम साहिबा की जान है वो। कहते हैं ना मालिक की पर्सनॉलिटी का बहुत असर पड़ता है पालतू जानवरों पर। शैरी भी इससे अछूती नहीं रही है। कॉलोनी के बच्चे शैरी को बहुत प्यार करते हैं और रोज़ उसके साथ खेलने आते हैं। शैरी भी अपनी प्यार भरी बातों से सबका दिल जीत लेती है।

ख़ूबसूरत फूलदानों में बेगम साहिबा ख़ुद बग़ीचे से फूल चुन-चुनकर लगाती हैं। यह बेगम साहिबा के बाग़बानी के शौक़ का ही नतीजा था कि उनकी छोटी-सी बगिया में हर मौसम में फूल खिला करते थे। ऐसा कभी नहीं होता कि गार्डेन में फूल न खिले हों। घर

को चारों तरफ़ से घेरते हुए एक हरा-भरा छोटा-सा गार्डेन है, जिसकी देखभाल की ज़िम्मेदारी बेगम साहिबा ने ख़ुद अपने हाथों में ले रखी है। गार्डेन की बाउंड्री पर बोगनवेलिया की बाड़ उन्होंने ख़ुद ही लगाई थी। बोगनवेलिया, तेज़ चिलचिलाती गर्मी में भी चटख रंगों से भरे फूलों से खिलने वाली एक जंगली झाड़ी है। जिसे न तो खाद की ज़रूरत होती है और न ही ज़्यादा पानी की। यह तो सख़्त-से-सख़्त मौसम में भी खिलना जानती है। रंगों की समझ भी बेगम साहिबा में बहुत ख़ूब है। घर को बोगनवेलिया की झाड़ियों से ऐसे सजाया है, जैसे किसी ने एशियन पेंट्स का शेड कार्ड खोलकर रख दिया हो। गहरा गुलाबी, फिर हल्का जमुनी, फिर हल्का गुलाबी, फिर सफ़ेद और सफ़ेद पर गुलाबी का हल्का शेड। दूसरी तरफ़ की बॉउंड्री पर सबसे पहले डार्क ऑरेंज बोगनवेलिया, उसके बाद हल्का केसरिया, फिर पीला बोगनवेलिया। बेगम साहिबा ने कितनी ही नर्सरियां छान मारी थीं, इन पौधों की तलाश में। आख़िरकार, उनकी मेहनत रंग लाई। जब साल गुज़रने पर बोगनवेलिया की झाड़ियों पर भर-भरकर फूल आए तो सारी कॉलोनी में यह घर मशहूर हो गया। सब ने इस घर को नाम ही दे डाला— 'बोगनविला'। चारों तरफ़ हरे-भरे पहाड़ों के बीच फूलों की बॉउंड्री से भरा यह घर किसी गुलदस्ते जैसा लगता था।

कॉलोनी के बच्चे ज़िद्द करके बेगम साहिबा की बगिया में खेलने आते। बेगम साहिबा भी बच्चों को ख़ूब प्यार करतीं और अपने पोते पोतियों की तरह ही दुलार करतीं। और क्यूं न दुलारतीं! बेगम साहिबा ख़ुद भी तो एक भरे पूरे घर का हिस्सा थीं। उनकी अपनी बगिया में भी तो कई ख़ूबसूरत फूल थे। हद से ज़्यादा प्यार करने वाला शौहर वजाहत अली, जो की आर्मी में बड़े अफ़सर थे और फ़िलहाल यूएन के डेपुटेशन पर अफ्रीकी देशों में तैनात थे। दो प्यारे-प्यारे बेटे और उनकी ख़ूबसूरत बहुएं। एक बेटा अमेरिका में था तो दूसरा जापान में। एक बेटी थी, शमा जिसकी शादी हो चुकी थी और वह दुबई में अपनी फेमिली में ख़ुश थी। शमा के दो बच्चे थे। बेगम साहिबा के बड़े बेटे ज़फ़र अली के पास तीन बच्चे और छोटे बेटे आमिर अली के पास दो बच्चे थे। आमिर का छोटा बेटा तो अभी सिर्फ़ दो महीने का ही हुआ है। अल्लाह ने बेगम साहिबा को बहुत ही फ़रमाबरदार औलाद से नवाज़ा है। बेगम साहिबा अपने बहू-बेटों की तारीफ़ करते ना थकतीं। दिन भर में सभी के फ़ोन आते रहते हैं। इतनी दूर होते हुए भी वे मां का हाल-चाल लेना नहीं भूलते। कभी बेटे का फ़ोन तो कभी बहू का तो कभी बेटी या दामाद का। हद तो तब हो जाती है जब बेगम साहिबा की बेटी की सास भी उनका हाल चाल लेना नहीं भूलतीं। किसी भी इंसान को जीने के लिए इससे ज़्यादा और भला क्या चाहिए? एक छोटा-सा कुनबा और उस कुनबे के लोगों के दिलों में एक दूसरे के लिए आपसी मुहब्बत।

अल्लाह ने बेगम साहिबा को कुनबा भी दिया है और कुनबे में मुहब्बत भी दी है। आए दिन बेगम साहिबा के लिए कोरियर से गिफ्ट्स आते रहते हैं। कभी उनके भाई भेजते हैं तो कभी बच्चे। अभी कुछ दिन पहले ही तो बेगम साहिबा ने सब लोगों को कश्मीरी सेब बांटे थे। कह रही थीं कि उनके भाई के हिमाचल में सेब के बाग़ हैं। वहीं से

सेबों की पेटियां आई हैं। बेगम साहिबा का दिल बहुत बड़ा है। आए दिन उनके घर पार्टियां होती रहती हैं। लोगों को खिलाना-पिलाना उनको पसंद है। कहती हैं, "ज़िंदगी का क्या भरोसा? जितने दिन हंस कर, ख़ुश होकर गुज़र जाए उतना अच्छा।"

बेगम साहिबा का घर जितना क़ायदे का है, बेगम साहिबा की ज़िंदगी भी उतनी ही क़ायदे वाली है। एक सेट रूटीन है, जिसको वह फॉलो करती हैं। सुबह आराम से उठना, फिर योग करना, उसके बाद गार्डेन में बैठ कर गर्म-गर्म अदरक वाली चाय पीना और दूर तक फैले हरियाली से भरे पहाड़ों को निहारना। ऊपर नीला आसमान और नीचे दूर तक फैली सहयाद्रि पर्वतमाला। और इन पर्वतों पर यहां-वहां डोलते बादलों के टुकड़े। सब कुछ वैसा ही जैसा की बेगम साहिबा ने कभी अपने घर के सपने के तौर पर सोचा था। ठंडी हवाओं से हिफ़ाज़त करती पश्मीना शॉल बेगम साहिबा पर ख़ूब फबता है। शैरी पर मुहब्बत से हाथ फेरती बेगम साहिबा दूर पहाड़ों के बीच न जाने क्या ढूंढा करती हैं?

बेगम साहिबा अपने शौहर के साथ देश और दुनिया बहुत घूमी हैं। इसलिए अब वह एक जगह रहकर अपने बुढ़ापे की ज़िंदगी सुकून से गुज़ारना चाहती थीं। इसीलिए उन्होंने पुणे के पास लवासा को चुना अपने रिटायरमेंट होम के तौर पर। जब बेगम साहिबा लवासा आईं तो यहां किसी को नहीं जानती थीं। पर कुछ ही वर्षों में वह आज पूरी कॉलोनी में मशहूर हो गई हैं। वह बहुत ही मिलनसार और मदद करने वाली ख़ुश दिल महिला हैं। किसी की कैसी भी परेशानी हो, सब परेशानियों का हल है बेगम साहिबा के पास। शुरू-शुरू में लोग यहां एक-दूसरे से इतना मिलते जुलते नहीं थे। सिर्फ़ आते-जाते हाय-हैलो हो जाया करती थी। लेकिन बेगम साहिबा के आने से अब यह हाय-हैलो से ज़्यादा रोज़ मिलने के सिलसिले में तब्दील गई है। अब यहां रोज़ ही महफ़िल लगती है। जो लोग वॉक करने पार्क में नहीं भी जाते थे, अब वे भी अपने वॉकिंग शूज़ निकाल कर वॉक पर आने लगे हैं। बेगम साहिबा ने ही लाफिंग क्लब शुरू किया। आज इस क्लब में बुज़ुर्गों से लेकर जवान और बच्चे लोग भी शामिल होते हैं। बेगम साहिबा की वजह से ही लवासा में बसी यह सोसायटी हाई-फाई होते हुए भी अब एक मुहल्ले की तरह मिलनसार हो चुकी है। सब लोगों को सब लोगों की चिंता रहती है। सब एक दूसरे की ख़ुशी और ग़म में शामिल होते हैं। पर इसका यह मतलब भी नहीं कि वे एक दूसरे की लाइफ में दख़लंदाज़ी करते हैं। यही इस जगह की ख़ासियत है। बेगम साहिबा जब अपने बच्चों से मिलने विदेश चली जाती हैं या फिर किसी रिश्तेदार के यहां जाती हैं तो लगता है जैसे कॉलोनी की रौनक़ ही चली जाती है। सब बेसब्री से बेगम साहिबा की वापसी का इंतिज़ार किया करते हैं। बेगम साहिबा को भी सबकी फ़िक्र रहती है। कामवाली बाइयों की परेशानियां सुनने से लेकर गली में घूमने वाले जानवरों को रोटी खिलाने तक। उनकी ख़ानदान भर में बड़ी इज़्ज़त है। रिश्तेदार बिना उनसे सलाह-मशवरा किए कोई काम न करते। बच्चों के नाम रखने से लेकर लड़कियों की शादी तक में बेगम साहिबा की राय को तरजीह दी जाती थी। अब भले से वह बार-बार ट्रेवेल नहीं कर पाती हैं, पर फ़ोन पर सब उनकी सलाह लेते हैं। फिर चाहे वह मायका हो या ससुराल। दोनों ही जगह बराबर से

इज़्ज़त कमाई है बेगम साहिबा ने।

अपनी सास की लाडली बहू थीं बेगम साहिबा। वह अक्सर पुराने दिनों की बातें सुनाती हैं। सब लोग उसे बड़ी दिलचस्पी से सुना करते हैं। किस तरह बेगम साहिबा लखनऊ के नवाब ख़ानदान के वारिसों में से एक शहरयार अली ख़ान के घर में चार बड़े भाइयों के बाद बड़ी मन्नतों से पैदा हुई थीं। उनके अब्बा ने कोई मस्जिद कोई दरगाह नहीं छोड़ी थी, जहां जाकर बेटी के लिए दुआ न की हो। आख़िरकार अल्लाह ने उनकी सुनी और नवाज़िश अली पैदा हुईं। बड़े ही लाड़-प्यार से बेगम साहिबा की परवरिश हुई। उनकी अम्मी ने बड़े ही नाज़ों से पाला था बेगम साहिबा को। चारों भाई अपनी ख़ूबसूरत और लाड़ली बहन नवाज़िश पर हाथों छाया करते और जान लुटाते। उनकी तालीम बड़े और ऊंचे स्कूलों में हुई। शिमला के बोर्डिंग में रहकर उन्होंने अपनी तालीम हासिल की, फिर दिल्ली आकर ग्रेजुएशन और पोस्ट ग्रेजुएशन किया। इसी बीच उनकी शादी आर्मी में कैप्टन वजाहत अली के साथ हुई और नवाज़िश अली को नाम मिला बेगम नवाज़िश अली। शादी के बाद बेगम अपनी ससुराल भोपाल आ गईं। बेगम साहिबा की ससुराल लोगों से भरी हुई थी। बेगम साहिबा की सास अपनी ख़ूबसूरत बहू की बलाएं लेते न थकतीं। वजाहत अली का ताल्लुक़ भी नवाबों के ख़ानदान से ही था। उनका घर नवाबों की बड़ी हवेली जैसा था। जिसके बड़े-बड़े कॉरिडोर और ऊंची-ऊंची छतों के कमरे हमेशा ठंडे रहते। मेन गेट से हज़ार मीटर का फासला तय करने के बाद हवेली शुरू होती। चारों तरफ़ हरियाली से भरे बग़ीचे और बीच में बड़ी सी हवेली। दिल बहलाने को एक से बढ़ कर एक ऐश और आसाइश का सामान। बेगम साहिबा की सास नई नवेली दुल्हन से कोई काम न करवातीं। दुल्हन के हाथों से मेंहदी का रंग ज़रा फीका पड़ जाता तो फौरन मेंहदी लगाने वालियों को ख़बर भेज दी जाती। नवाबों की इस हवेली में जलसे मनाने के बहाने ढूंढे जाते। मेंहदी लगना भी ऐसा ही एक बहाना होता। नाम तो दुल्हन भाभी का होता और हवेली की एक-एक औरत की हथेलियां मेंहदी के गाढ़े रंग से सज-सज जातीं। मनिहारिन को बुलवा कर कांच की रंग बिरंगी चूड़ियां सब की कलाइयों में भर-भर कर पहनवाई जातीं। तो मालन रोज़ बालों के लिए जूही-चमेली के गजरे बना कर दे जाती। बेगम साहिबा बताती हैं कि उनकी सास ने उनके बड़े नाज़ उठाए। ख़ानदानी लोगों में बहू का हाथ खीर में पूरे एक साल तक नहीं डलवाया जाता। बेगम साहिबा की सास से जब आसपास की औरतें पूछतीं की बहू रानी का हाथ खीर में कब डलवा रही हैं तो वह बड़े लाड़ से कहतीं, “अरे बिटिया, करने दो थोड़ा आराम मेरी बहू को। अभी तो इसके हाथों की मेंहदी भी फीकी नहीं पड़ी है। घर गृहस्थी करने को तो पूरी उम्र पड़ी है, कर लेगी।”

औरतें हंसतीं और जवाब में कहतीं, “बड़ी बेगम, मेंहदी का रंग फीका कैसे पड़ेगा? आप तो रंग उतरने से पहले ही दुबारा लगवा देती हैं।”

“आए हटो भी, अब मैं अपनी बहू के नाज़-नखरे न उठाऊंगी तो कौन उठाएगा? जब तक हम ज़िंदा हैं, ख़ूब सजाएंगे-संवारेंगे अपनी बहूरानी को। तुम लोग काहे जलती हो? अल्लाह रक्खे उसके सुहाग को। मौला यूं ही करम करता रहे। ख़ूब जिएं मेंहदी लगवाने

वालियां और जिए उनके सुहाग।"

सास के लाड़ और शौहर की बेपनाह मुहब्बत से सराबोर बेगम साहिबा साल पूरा होते होते हवेली को वारिस देने वाली थीं।

बहू बेगम का पावं भारी है... बहू बेगम का पावं भारी है... यह सरगोशियां ज़नानख़ाने में सुनाई देतीं। बेगम साहिबा की सास को तो मानो पंख ही लग गए हों। उनकी लाड़ली बहू उन्हें पोता जो देने वाली थी। बड़ी बेगम अपनी बहू का ख़ास ख़्याल रखतीं। तमाम हिदायतें और दुआओं के बीच बेगम साहिबा अपने होने वाले बच्चे के लिए स्वेटर बुनतीं। अल्लाह साथ ख़ैरियत के वो दिन भी लाया जब बेगम साहिबा की गोद में एक चांद सा बेटा आया।

बेगम साहिबा लोगों से ये बातें साझा करती रहतीं। लोग भी बड़े चाव से बेगम साहिबा की पुराने दिनों की बातें सुना करते। सब को बड़ा मज़ा आता। बेगम नवाज़िश अली की ज़िंदगी ख़ुशियों से गुलज़ार थी। उन्होंने भी अपनी पूरी ज़िम्मेदारी निभाई। बच्चों की परवरिश से लेकर उन्हें बड़ा करने तक। आज सब बच्चे अपनी अपनी गृहस्थी जोड़े बैठे हैं। और क्या चाहिए एक औरत को?

मिसेज़ शर्मा ने ख़ामोशी से मिसेज़ वर्मा को एक कोने में ले जाकर उनके कान में कुछ कहा। घर में आने वाला हर शख़्स हैरान था।

"कल ही तो मिला था मैं बेगम साहिबा से! मेरी जॉब के बारे में पूछ रही थीं।"— कोई बोला

"कैसे हुआ ये अचानक?" मिसिज चोपड़ा अभी-अभी पहुंची थीं, फूली हुई सांस को ठीक करते हुए पूछा।

किसी को कुछ नहीं मालूम। कोने में बैठी नौकरानी कमला रोए जा रही है। कुछ लोग उसे दिलासा दे रहे हैं और पूछ रहे हैं।

"मैं जब सुबह बेगम साहिबा को उठाने आई तो देखा कि वो बिल्कुल शांत बिस्तर पर पड़ी हैं। मैंने कई आवाज़ें दीं पर वो न उठीं। तब मैंने पास जाकर उन्हें जगाने की कोशिश की। उनमें फिर भी कोई हरकत न हुई तब मैंने उनकी नब्ज़ टटोली। नब्ज़ बंद थी। बेगम साहिबा शायद रात में ही गुज़र गई थीं किसी वक़्त। उनका सारा बदन ठंडा पड़ा था।" कमला ने सुबकते हुए सबको बताया। कमला, बेगम साहिबा की नौकरानी है जो कि बरसों से उनके साथ ही रहती है।

"उनके पति को ख़बर की क्या?" मिस्टर गुप्ता ने पूछा।

"नहीं अभी तो नहीं।" कोई बोला।

"तो अब फिर इंतज़ार किस बात का है, जल्दी से उनके पति और बच्चों को ख़बर करो।" मिस्टर सक्सेना ने अपनी बात पर ज़ोर डालते हुए कहा।

सीमा ने आगे बढ़कर बेगम साहिबा का मोबाइल उठा लिया और फ़ोन बुक से नंबर निकाल कर डायल करने लगी। उसने कई बार नंबर मिलाया पर बार-बार एक ही जवाब मिल रहा था।

“डायल किया हुआ नंबर कृपया जांच लें।” सीमा हैरान! ऐसा कैसे हो सकता है? उसने कई बार बेगम साहिबा को इसी नंबर से अपने पति वजाहत अली से बात करते हुए सुना है।

“क्या हुआ?”

“फ़ोन नहीं लग रहा है”

“कोई बात नहीं बेटे को फ़ोन लगाओ।” मिसेज़ वर्मा ने कहा।

सीमा बेटे को फ़ोन लगाती हैं। फिर वही जवाब। “डायल किया गया नंबर मौजूद नहीं है।”

सीमा एक-एक कर बेटा, बहू, बेटी, पोती सब का मोबाइल ट्राई करती है, पर किसी का नंबर नहीं लग रहा है। सब हैरान हैं।

“अब क्या करें?” किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

“बेगम साहिबा के पति यूएन के डेप्युटेशन पर आफ्रिका में पोस्टेड हैं ना। मैं अभी जाकर आर्मी हेड क्वॉर्टर से पता करता हूं। मेरे एक दोस्त का भाई भी पोस्टेड है वहां।” लोगों को मायूस देख रोहन ने तपाक से कहा।

रोहन अपने दोस्त को फ़ोन करता है और आर्मी हेड क्वॉर्टर का नंबर हासिल करता है और वहां फ़ोन कर वजाहत अली के बारे में पूछताछ करता है। लेकिन उधर से जो जानकारी मिलती है वह और भी हैरान करने वाली होती है। रोहन को पता चलता है कि आर्मी में इस समय वजाहत अली नाम का कोई अधिकारी यूएन के डेप्युटेशन पर आफ्रिका में नहीं हैं। हां, एक बिग्रेडियर वजाहत अली थे, पर उनकी डेथ तो दो साल पहले ही हो चुकी है।

रोहन परेशान हो जाता है। आख़िर, यह कैसे हो सकता है? कल जब रोहन बेगम साहिबा से कुछ सलाह लेने आया था तो वह अंकल से बात कर रही थीं फ़ोन पर। उसके सामने ही। उसने अपनी इन्हीं आंखों से देखा था।

अचानक सीमा को बेगम साहिबा की एक बात याद आती है। कुछ दिनों पहले बेगम साहिबा ने सीमा को बुलवाया था। सीमा और बेगम साहिबा कुछ ही दिनों में बहुत क़रीब आ गईं थीं। बेगम साहिबा सीमा को पसंद करती थीं और अपना सबसे क़रीबी दोस्त मानती थीं। सीमा भी बेगम साहिबा से क्लोज़नेस फील करती थी। कोई भी काम होता तो सीमा उनके पास झट से चली आती। उस दिन सीमा आई तो बेगम साहिबा स्वेटर बुन रही थीं। सीमा ने पूछा, “किसके लिए बुन रही हैं ये छोटा-सा स्वेटर बेगम साहिबा?”

बेगम साहिबा ने ऊन और सलाइयां साइड टेबल पर रख दीं और बोलीं, “अरे वो छोटे बेटे आमिर को बेटा हुआ है। उसी के लिए बुन रही हूं। वहां बहुत ठंड होती है न इसलिए।” सीमा मुस्कुरा दी थी और लाड़ से बोली थी, “बेगम साहिबा, काश आप जैसी सास भगवान मुझे भी देता! आप जब देखो तब अपने बच्चों के लिए कुछ-न-कुछ बनाती ही रहती हैं। कभी स्वेटर बनाती हैं, कभी अचार डालती हैं, कभी पापड़ बनाती हैं, कभी बाड़ियां तोड़ती हैं। आज कल कौन करता है यह सब?”

बेगम साहिबा ने सीमा के सिर पर मुहब्बत से हाथ फेरा और कहने लगीं, “बिटिया मां होती ही इसीलिए हैं। वह तो हर उम्र में अपने बच्चों के काम आना चाहती है। जब बच्चे छोटे होते हैं तो उनको बड़ा करती है। जब वे बड़े हो जाते हैं तो उनके बच्चों के लिए स्वेटर बनाती है। उनके बच्चे खिलाती है। यही तो यूटीलिटी वेल्यू है एक मां की। इसी के लिए तो जीती है वो।

अच्छा सुनो, मैंने तुम्हें एक बेहद ज़रूरी काम से बुलाया है। तुम मेरी समझदार बिटिया हो। मेरा एक काम करोगी?”

सीमा ने हां में सिर हिलाया। बेगम साहिबा ने बराबर में रखी मेज़ से एक लिफ़ाफ़ा उठाया और सीमा को दे दिया। सीमा कुछ समझी नहीं। बेगम साहिबा ने कहा, “बिटिया, यह मेरी अमानत है। तुम इसे अपने पास संभाल कर रखना। इसमें एक बहुत अहम दस्तावेज़ है। वायदा करो की तुम इसकी हिफ़ाज़त करोगी और मेरे मरने के बाद ही इसे खोलोगी। बिटिया, तुम मेरे जीते जी इसे कभी नहीं खोलना।”

सीमा ने बेगम साहिबा से वायदा किया और अमानती लिफ़ाफ़े को लाकर घर की आलमारी में हिफ़ाज़त से रख दिया। वह इस लिफ़ाफ़े को रखकर भूल भी गई थी। लेकिन, आज जब बेगम साहिबा इस दुनिया में मौजूद नहीं हैं तो उसे अचानक यह लिफ़ाफ़ा याद आ गया। सीमा ने किसी को कुछ नहीं कहा और सीधे घर की तरफ़ लपकी। जल्दी-जल्दी अलमारी खोली। जल्दी-जल्दी खोजने में सारे कपड़े उलट-पुलट डाले। लिफ़ाफ़ा मिल गया! सीमा ने इसे झट से खोला। लिफ़ाफ़े में काग़ज़ों का एक पुलंदा था। सीमा ने पढ़ना शुरू किया।

प्यारी सीमा,

हमेशा ख़ुश रहो। तुम सोच रही होगी कि मैं तो इसे दस्तावेज़ कह रही थी पर यहां तो कोई दस्तावेज़ नहीं है, यह तो एक ख़त है बस। पर नहीं, तुम जिसे पढ़ने जा रही हो वह एक ख़त न होकर मेरी ज़िंदगी का दस्तावेज़ है। मैं जानती हूं कि तुमको कुछ भी समझ में नहीं आ रहा होगा। तुम पहले ही मेरा जनाज़ा देखकर दुखी और परेशान होगी। मेरे शौहर और बच्चों के फ़ोन न लगने से तुम और हैरान हो गई होगी। अब यह काग़ज़ों का पुलंदा तुम्हारे सामने एक पहेली की तरह बिखरा हुआ है। तो मेरी बच्ची, ध्यान से सुनो। आज मैं तुमको वह राज़ बताने जा रही हूं, जिससे तुम सब बिलकुल अंजान हो। मेरा नाम बेगम नवाज़िश अली नहीं है और न ही मैं किसी आर्मी ऑफ़िसर वजाहत अली की बेगम हूं। अब तक तो शायद तुमको यह भी पता चल चुका होगा कि कैप्टन वजाहत अली का दो साल पहले इंतिक़ाल हो चुका है।

ढेर सारे अबूझ सवाल हैं, जो तुम्हारे सामने एक पहेली की तरह खड़े हैं। चलो मैं अपनी असली कहानी बताना शुरू करती हूं। मेरा असली नाम महक है। किसी ज़माने में मैं एक मशहूर तवायफ़ हुआ करती थी। जिसे बड़े लोगों की महफ़िल में बड़ी तहज़ीब से बुलवाया जाता था। एक ऐसी तवायफ़ जिसका एक क्लास था। एक ख़ास रुतबा था और बड़े और रसूख़दार लोगों में उठना-बैठना था।

अब तुम ये न समझना कि मेरी भी कहानी वैसी ही घिसी-पिटी कहानी होगी, जैसी कि इस पेशे से जुड़ी सभी लड़कियां अक्सर सुनाया करती हैं। कोई दुख भरी दास्तान कि उसका कोई चाचा या मामा या फिर आशिक़ उसे कोठे पर बेच गया और उसे मजबूरन इस पेशे को अपनाना पड़ा। मेरी कहानी में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था। मुझे किसी ने इस पेशे को करने के लिए मजबूर नहीं किया था। यह पेशा तो मेरे नसीब में उसी दिन ख़ुदा ने लिख दिया था जब मैं अपनी मां के पेट में आई थी। मेरी मां मुंबई की एक मशहूर तवायफ़ थीं। उनकी ख़ूबसूरती और नाज़ो-अदा के चर्चे दूर-दूर तक थे। जब मैं पैदा हुई तब से मैंने यही माहौल देखा और मुझे ऐसे पाला गया कि बड़ी होकर एक दिन मैं भी अपनी मां की तरह एक मशहूर तवायफ़ बनूंगी। यह काम था हमारा। जिसे करने में मुझे कोई परहेज़ न था। मेरी तालीम अच्छे और बड़े स्कूलों में करवाई गई। लिटरेचर का शौक़ मुझे वहीं से पड़ा। मेरी अम्मी बताती थीं कि मेरे बायोलॉजिकल फादर नवाबों के किसी ख़ानदान से थे। इसीलिए हमारे हर अंदाज़ में थोड़ी-सी नवाबीयत झलका करती है। समय का चक्र चला और देखते-ही-देखते मैं बड़ी और मेरी मां बूढ़ी हो गईं। अब काम मुझे संभालना था। मैं बड़े आराम और महारत से अपनी अम्मी के नक़्शे क़दम पर चल रही थी। यह एक ऐसी दुनिया थी, जहां प्यार-मुहब्बत और रिश्तों की कोई कमी नहीं थी। मेरे क़द्रदान मुझ पर प्यार और दौलत दोनों ही जी भर कर लुटाते। बस इतना था कि ये सब रिश्ते बिना गारंटी कार्ड के आते थे। बिलकुल चाइना के माल जैसे। चले तो लंबे चल गए और नहीं चले तो एक बार में ही फिस्स। कोई रिश्ता सिर्फ़ एक रात का होता तो कोई रिश्ता कुछ हफ़्तों तक चलता। कोई रिश्ता कुछ लंबा खिंच जाता तो महीनों यहां तक कि सालों तक भी चल जाता। लोग सुकून की तलाश में मेरे पास आते और बेचैन होकर फिर वापस आने को लौट जाते। ये सिलसिला यूं ही चलता रहा। हमारे कोठे की सबसे बूढ़ी तवायफ़ नसीबन बुआ कहतीं, “बिटिया तवायफ़ की जवानी तो चुटकियों में बीत जाती है। पर बुढ़ापा नहीं बीतता। भरी जवानी में हम जैसी औरतें जिन बातों को तवज्जो नहीं देतीं, वही बातें उम्र ढलने के साथ बड़ा एहसास करवाती हैं।” मैं हंसकर उनकी बातें हवा में उड़ा देती। लेकिन, वह मेरी नसमझी थी। नसीबन बुआ सही कहती थीं। यह उनका भोगा हुआ सच था। तब उनको देखकर यह विश्वास करना मुश्किल था। पर एक वक़्त था जब वह भी जवान थीं और उनके भी हज़ारों क़द्रदान थे।

मुझे बड़े-बड़े घरानों में मुज़रे के लिए बुलवाया जाता। नवाबों की हवेलियों में, मंत्रियों के महलनुमा बंगलों में, फ़ौज के बड़े अफ़सरों की प्राइवेट पार्टियों में। उन बड़े घरों में जाकर मुझे एहसास होता कि इन घरों की औरतों और मुझ में कितना फ़र्क़ है। इनका घर है, गृहस्थी है बच्चे हैं, एक आदमी है और उस आदमी से जुड़े बहुत सारे रिश्ते-नाते हैं।

वह जो एक गृहस्थन है, वह महज़ एक औरत भर नहीं है। वह किसी की चाची है, ताई है, मां है, मामी है। किसी की मौसी है तो किसी की बहू है। किसी की बहन है। किसी की बेटी है। किसी की सास है। किसी की ननद है। किसी की देवरानी है तो किसी की जेठानी।

"और मैं किसी की कुछ भी नहीं।" यह एहसास अब मुझे अंदर तक सालने लगा था। मैं जब ऐसी किसी महफ़िल से वापस आती तो गहरी उदासी में डूब जाती। मुझे उदास देखकर नसीबन बुआ समझाती, "बिटिया ऐसे उदास न रहा करो। दिल में जो ख़्याल घूमा करते हैं, उन्हें काग़ज़ पर लिखा करो। काग़ज़ पर अपने दिल की बात लिख देने से दिल का बोझ हल्का हो जाया करता है। तुम तो स्कूल के दिनों में अच्छी कहानियां भी लिखा करतीं थीं। इसे फिर से शुरू क्यूं नहीं करतीं?" नसीबन बुआ की सीख ने मुझे अपने पुराने शौक़ को फिर से ज़िंदा करने का विचार दिया। मैंने ख़ाली वक़्त में कहानियां लिखनी शुरू कर दी। वह जो मेरी ज़िंदगी की मेहरुमियां थीं जो शायद कभी भी इस दुनिया में पूरी नहीं हो सकती थीं, वह मेरी कहानियों में पूरी होने लगीं। हर वो चीज़ जो मेरी इस ज़िंदगी से दूर थी मेरी कहानियों में जगह पाने लगी। ऐसी कहानियां जिनमें प्यार था। रिश्ते-नाते थे, वो भी गारंटी कार्ड के साथ वाले। और उन सबके बीच होती थी मैं। हर कहानी की नायिका मैं।

सीमा तुमने तो शायद नहीं पढ़ी होंगी मेरी लिखी कहानियां। तब तुम शायद छोटी रही होगी जब मेरी कहानियां मैगज़ीनों में छपा करती थीं। मेरी कहानियां मैगज़ीन तक कैसे पहुंची ये क़िस्सा भी बड़ा ही दिलचस्प है। हुआ यूं कि मेरे एक क़द्रदान काशिफ साहिब एक दिन अपने एक दोस्त को साथ ले आए जो कि किसी बड़ी मैगज़ीन के एडिटर थे। एडिटर साहिब जब एक बार आए तो फिर आते ही रहे। एक दिन उन्हें मेरी कहानियों की डायरी हाथ लग गई। मैं उस वक़्त किचन में थी तो जनाब एडिटर साहिब ने एक सांस में आधी डायरी पढ़ डाली। मुझे देखा तो पूछने लगे, "ये डायरी किसकी है?"

मैंने कहा मेरी है। उन्हें हैरानी हुई, "ये कहानियां तुमने लिखी हैं?" मैंने कहा, "हां!"

"वाह! महक बेगम तुम तो अच्छी ख़ासी अफ़साना निगार (कहानीकार) हो। "तुम अपनी ये कहानियां छपवाती क्यूं नहीं?"

"मैंने तो बस यूं ही लिख डाली थीं ये कहानियां। इन्हें कौन छापेगा?" मैंने झेंपते हुए कहा।

"हम छापेंगे, और कौन छापेगा!" एडिटर साहिब बोले।

"पर एक मुश्किल है। इन कहानियों के लिए तुमको अपना नाम बदलना होगा। 'महक' इन भारी-भरकम कहानियों को सूट नहीं करता। चलो हम ही तुमको एक नाम दे देते हैं— 'बेगम नवाज़िश अली'। देखो यह नाम तुम्हारी पर्सनॉलिटी को सूट भी करता है।"

और इस तरह मेरा नाम बेगम नवाज़िश अली पड़ गया। मेरी कहानियां मैगज़ीन में इसी नाम से पब्लिश होने लगीं। ये सिलसिला सालों चला। मैं कहानियां लिखती जाती और मैगज़ीन में छपती जातीं। लोग मेरी लिखी कहानियों को बहुत पसंद करते थे। लोग फैन मेल भेजते। मुझसे मिलने का इसरार करते। पर मैं किसी से न मिलती। यह मेरे और एडिटर साहिब के बीच पहले से ही तय हो चुका था कि वे किसी को मेरी पहचान नहीं बताएंगे।

उम्र का घोड़ा अपनी तेज़ रफ़्तार में हवाओं से बातें कर रहा था। मैं बूढ़ी होने लगी थी और मेरी मां और बूढ़ी। वह अब बीमार रहने लगी थीं। एक लंबे अरसे तक बीमार रहने के बाद एक दिन वह अल्लाह को प्यारी हो गईं और महक इस भरी दुनिया में अकेली रह गई। अब मेरे क़द्रदान भी कम हो चुके थे। कोई भूला बिसरा चला आता तो चला आता। मुझे रह-रहकर नसीबन बुआ की बातें याद आतीं। वे सही कहती थीं। जवानी में कभी भी मुझे नहीं लगा था कि एक अदद शौहर भी होना चाहिए। मैंने जिस माहौल में आंखें खोली थी, वहां माएं तो होती थीं, पर बाप नहीं होते थे। किसी घर में एक अदद शौहर की क्या जगह और ज़रूरत होती है, यह मैं समझ ही नहीं पाई थी। ऐसा नहीं था की मेरी ज़िंदगी में आदमियों की कमी रही थी। पर असल ज़िंदगी जीने के लिए बहुत सारे नहीं सिर्फ़ एक आदमी चाहिए होता है। एक ऐसा आदमी जिसके बराबर सोते हुए मुझे यह भरोसा हो कि यह मुझे हमेशा मेरे नज़दीक ऐसे ही मिलेगा। यह डर न हो कि कल यह आदमी यहां नहीं होगा। एक ऐसा आदमी जिसका मैं शाम ढलने पर इंतज़ार करूं कि वह आता ही होगा... वह आएगा....जल्दी या रात गए... पर यहीं लौटकर आएगा मेरे पास... वह दुनिया में कहीं भी चला जाए पर लौटकर मेरे ही पास आएगा।

जब बड़े लोगों के घरों में कोई फंक्शन मसलन गोद भराई, बच्चे की छट्ठी या फिर कोई और रस्म होती और मुझे बुलाया जाता तो उसे देखकर मेरी ज़िंदगी की मेहरुमियां मुझे अंदर तक छलनी कर डालतीं। उनके लिए मंगल गीत गाते हुए मैं सोचा करती कि अगर मैं कोशिश करती तो शायद मां भी बन सकती थी। जैसे की मेरी मां ने किया था। पर फायदा क्या होता? आख़िर, मेरे बच्चे के लिए मंगलगीत कौन गाता? कौन मेरी गोद भरता? कौन सदक़ा देता? मेरी दुनिया में तो न सास थी, न दादी। जो मुझे नसीहतें करतीं कि बहू बेगम ज़रा धीरे से पावं रखो ज़मीन पर। ऐसे नहीं... ऐसे बैठो। यह खाओ... यह मत खाओ। ज़रा-सी तबीयत ख़राब हो जाने पर पूरा का पूरा परिवार जमा हो जाए, ऐसा तो नसीबवालियों को मिलता है। उसके लिए अलग तरह की क़िस्मत लिखाकर लानी होती है शायद। सब लोगों के नसीब में यह सब कहां!

तुम लोगों को भी जो मैंने अपनी शादी और ससुराल की कहानियां सुनाईं थीं, वह दरअसल वे सपने थे जो मैं अपने लिए देखा करती थी। मां की मौत के बाद मैं बिलकुल अकेली हो चुकी थी। ऐसे में मैंने ख़ुद को कहानियां लिखने में डुबो दिया था।

मैं दिमाग़ी तौर पर इतनी कमज़ोर हो गई थी की मेरी कहानियों के किरदार मुझे हक़ीक़त में दिखाई देने लगे थे। मेरे नज़दीक रिश्ते नातों की कमी मेरे दिमाग़ पर इतनी हावी हो चुकी थी कि वह सब मुझे ज़िंदा जान पड़ते थे। भोपाल में नवाबों वाली अपनी ससुराल, शौहर... और बच्चे। मैं उन लोगों से बातें किया करती।

नसीबन बुआ से मेरी यह हालत देखी न गई और वह मुझे दिमाग़ के डॉक्टर के पास ले गईं। वहां कई टेस्ट हुए और फिर पता चला कि मुझे स्किजोफेनिया नाम की बीमारी है। यह एक ऐसी दिमाग़ी बीमारी है जिसमें इंसान को ऐसे लोग दिखाई देते हैं जो असलियत में होते नहीं हैं। वे उनसे बातें करते हैं और उन्हें सच मानते हैं। बुआ बेहद परेशान थी। वह

यह सोच-सोचकर हलकान हुए जा रही थीं कि अब मेरा क्या होगा? मुश्किल की उस घड़ी में वजाहत अली साहब सामने आए। वे मेरे पुराने क़द्रदान थे। आर्मी में बड़े अफ़सर थे। साल-दो साल में जब उन्हें मेरी याद आती तो बुलावा भेजते। इस बार जब उन्होंने बुलवाया तो बुआ ने मना कर दिया। वजाहत साहब मुझसे शायद मुहब्बत किया करते थे। कोई कमिटमेंट नहीं था पर एक लगाव था। जब उन्हें मेरी बीमारी का पता चला तो ख़ुद ही चले आए। शायद इंसानियत के नाते। उन्होंने मुझे बहुत समझाया और हौसला दिया। मेरे सामने दो रास्ते थे तब। एक या तो मैं अपनी बीमारी को सबके सामने ज़ाहिर कर दूं और लोगों की हमदर्दी और तरस खाती निगाहों से ख़ुद को रोज़ लहूलुहान करवाऊं या फिर अपनी इस बीमारी को एक्सेप्ट करके इसके साथ जीने की सोचूं। फ़ैसला मुझे करना था। मैं एक ऐसी इंसान थी जो कुछ भी सुन सकती थी पर ख़ुद के लिए 'बेचारी' शब्द नहीं सुन सकती थी। जब मैं छोटी थी तो स्कूल से वापस आते हुए गलियों में उन मनहूस घरों को देखती, जिनकी खिड़कियों से झांकती बूढ़ी लाचार अकेली औरतें सूनी आंखों से रास्तों को तका करतीं। उनकी धंसी हुई पथराई आंखें मुझे डरा देती थीं। मैं ऐसी नहीं बनना चाहती थी। लोगों की हमदर्दी झेलने की ताक़त नहीं थी मुझमें। लोगों के हमदर्दी भरे बोल मुझे और छोटा बना देते थे। इसलिए मैंने अपनी इस बीमारी के साथ जीने का फ़ैसला किया और वजाहत अली साहब ने मेरा साथ दिया। वे अपनी मजबूरियों के चलते हमेशा के लिए मेरी ज़िंदगी में शामिल तो नहीं हो सकते थे, पर उन्होंने मुझे अपना नाम दिया मेरे दिल की तसल्ली के लिए। वैसे भी मैं उनके जैसा ही शौहर चाहती थी अपनी ज़िंदगी में। जैसे मेरी कहानियों में एक भरा पूरा ख़ानदान और रिश्ते होते थे। जिन्हें मैं सच में महसूस किया करती थी। मैं उनके साथ जीने लगी। मैं हमेशा से सोचती थी कि मेरे दो बेटे और एक बेटी हो। सो मान लिया कि वो हैं। मेरे साथ। मेरे पास।

तुम लोगों को मैं जो बातें बताया करती थी, दरअसल वह सच्चाई में होती नहीं थी। पर मैं उन्हें महसूस करती थी। तुम सोच रही होगी सीमा की फिर वे फ़ोन जो दिन भर आया करते थे वो किसके थे। मेरा फ़ोन प्रीपेड फ़ोन है। मुझे जब भी किसी कस्टमर केयर से कॉल आती तो मैं उसे अपने बच्चों, रिश्तेदारों के नाम से सेव कर लिया करती। फिर उनसे ही बातें किया करती।

तुम यह भी सोच रही होगी की दीवारों पर टंगी इन तस्वीरों में जो लोग हैं, फिर वे कौन लोग हैं? ये सब लोग इस दुनिया में तो हैं पर मेरे अपने नहीं हैं। रिश्तों की भूख और प्यार की तलाश ने मुझे इन लोगों से मिलवाया। जिस तरह मेरे अंदर की मां को लाड़ करने के लिये बच्चे चाहिए थे, ऐसे ही इस दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनके पास मां नहीं होती। उन्हें एक अदद मां चाहिए होती है। फिर चाहे वह सगी मां न भी हो तो कोई मसला नहीं। मेरी यह तलाश आसपास के शहरों में बने अनाथालयों में जाकर पूरी होती। ऐसे हज़ारों बच्चे हैं जो एक मां ढूंढते हैं। मैं जो स्वेटर बुना करती थी वो मैं ऐसे ही किसी अनाथ बच्चों के लिए बुना करती थी। आख़िर मैं भी तो अनाथ ही थी। इन अनाथालयों में पलकर बड़े हुए बच्चों की शादियों में जाती तो लगता अपने बहू-बेटों को ब्याह कर लाई

हूं। वे लोग भी मुझे मां जैसा ही मान देते। तुमने शायद नहीं सुना होगा सीमा पर जयपुर में किराए पर बाराती भी मिलते हैं। रिश्ते-नातों की मेरी इस तलाश ने मुझे उन लोगों से भी जोड़ दिया। मैं आए दिन इनके साथ शादियों में जाया करती थी। वजाहत अली साहब ने मेरा बहुत साथ दिया इस बीमारी से लड़ने में। यहां लवासा में घर लेने में और अपने सपनों का संसार बसाने में। मुझे हौसला दिया और ये भरोसा भी दिलाया कि मैं इस बीमारी से जीत सकती हूं। उनके इस भरोसे और दवाइयों से ही मैं इस बीमारी से बाहर निकल पाई। वे मुझे बहुत पहले से जानते थे। मेरे अंदर की जीने की ललक को पहचानते थे। ऐसा नहीं था कि मेरे मन में सुसाइड करने का ख़्याल नहीं आया। बल्कि कई बार आया। पर मैं जीना चाहती थी। अपने हिस्से की ख़ुशी हासिल करना चाहती थी। सो मैंने की। तुम सोचती होगी कि मैंने तुम लोगों से कितना झूठ बोला। तुम्हें कितना धोखे में रखा। पर एक बात बताओ मेरी बच्ची, अगर मेरी सच्चाई तुम लोग जान जाते तो क्या कभी मेरे नज़दीक आते? झूठ तो हम सभी बोलते हैं अपनी ज़िंदगी में, जब जितनी ज़रूरत होती है। कोई रोटी में नमक के बराबर झूठ बोलता है तो कोई आटे के बराबर। मैंने भी तुम लोगों से बहुत झूठ बोले। पर ये ज़रूरी भी थे मेरे जीने के लिए। तुम इसे आत्ममोह की पराकाष्ठा कह सकती हो।

ज़िंदगी आपको हमेशा यह मौक़ा देती है कि आप अपने लिए उसे चुन सकें। या तो आप अपनी क़िस्मत को कोस-कोसकर पूरी ज़िंदगी रोते-रोते बिता दें या फिर जैसी ज़िंदगी ख़ुदा ने आपको दी है उसे अपने हिसाब से जीने लायक़ बना लें। फ़ैसला आपको करना है। मैंने दूसरा वाला रास्ता चुना और पूरी कोशिश की कि बिना किसी को तकलीफ़ पहुंचाए अपनी ज़िंदगी अपने हिसाब से जी सकूं। कम-से-कम इतनी ख़ुशी की हक़दार तो मैं थी ही। मैंने ख़ुशियों को असली या नक़ली के फेर में पड़े बिना जिया है। तुम लोगों से यह सब छुपाया इसके लिए मैं तुम सबसे माफी मांगती हूं। तुम लोगों का दिल दुखाया। हो सके तो इसे मेरी मजबूरी समझकर माफ़ कर देना। क्या करूं, मेरे अंदर की अनापसंद इंसान में यह हिम्मत ही नहीं थी कि तुम लोगों की आंखों में अपने लिए तरस का भाव देख पाती। ख़ुद को बिचारी नहीं कहलावा सकती थी इसीलिए छुपाया तुमसे। मेरे वसीहत के मुताबिक मेरे घर, जिसे तुम सब 'बोगनविला' कहते हो, को किसी ऐसे अनाथ जोड़े को दे देना जो अपनी नई-नई दुनिया बसाने जा रहा हो। जब वे मेरे इस घर में रहेंगे और अपनी गृहस्थी बसाएंगे तो मुझे लगेगा कि मेरे हिस्से की ख़ुशी मुझे मिल गई है।

और हां, मेरे जनाज़े को उठाने के लिए किसी का इंतज़ार करना फ़िज़ूल है। कोई नहीं आएगा, क्योंकि मेरा कोई था ही नहीं। मेरी दोस्त होने के नाते तुमको ही यह ज़िम्मेदारी निभानी होगी। चलो जाओ और जाकर मेरा जनाज़ा उठवाओ। मैंने रिश्ते भले ही नक़ली जिए हैं, पर दोस्त तो असली कमाए हैं।

तुम्हारी बदनसीब दोस्त

बेगम नवाज़िश अली

सीमा का चेहरा आंसुओं से भीग चुका था। आज वह ख़ुद को बेगम साहिबा की जगह रखकर सोच रही थी। अगर वह उनकी जगह होती तो क्या करती? ऐसे हालत में इससे बेहतर तो किया ही नहीं जा सकता था। इतने मुश्किल भरे ज़िंदगी के सफ़र में मुस्कुराते हुए जीना अपने आप में एक कला है। फिर क्यों न इसके लिए थोड़ा झूठ ही बोला गया हो। और फिर झूठ हम में से कौन नहीं बोलता? सभी तो बोलते हैं। थोड़ा कम या ज़्यादा। इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है। सीमा ने बेगम साहिबा के ख़त को फोल्ड कर वापस लिफ़ाफ़े में रखा और उनके घर की तरफ़ चल दी। सीमा ने देखा बेगम साहिबा का घर 'बोगनविला' बोगनवेलिया की कटीली झाड़ियों से गुलज़ार था। बोगनवेलिया पर ढेर सारे रंग-बिरंगे फूल खिले थे। आज सीमा को समझ आया कि बेगम साहिबा को बोगनवेलिया इतना पसंद क्यूं था? शायद इन फूलों से मिलती-जुलती ज़िंदगी थी उनकी। कांटों से भरी हुई फिर भी मुस्कुराती हुई। सीमा ने इन खिलते मुस्कुराते फूलों की झाड़ियों को देखा तो पहले भी था, पर आज इनके लिए उसके मन में एक अजीब तरह की इज़्ज़त शामिल हो गई थी। उसे बोगनवेलिया का जीवन दर्शन समझ आ गया था। बोगनबेलिया के फूलों से नज़रे हटाकर सीमा घर के अंदर दाख़िल हुई और बेगम साहिबा की अंतिम यात्रा की तैयारियों में जुट गई।

ठीकरे की मांग

आलिया समझ नहीं पा रही थी कि पैरों पर बोझ ज़्यादा लग रहा है या फिर मन पर। थके-मादे क़दम उठाए वह ख़ुद को लगभग घसीट कर ही ला पाई थी घर तक। अब रह-रहकर उसे अफसोस भी हो रहा था कि क्या ज़रूरत थी, परवेज़ की दुकान पर जाने की? जिससे, इतने सालों तक मुलाक़ात नहीं की उसे देखने की चाह इतनी बलवती हो गई कि बिना कुछ सोचे-समझे आलिया उससे मिलने उसकी दुकान तक जा पहुंची। वह क्या था, जो भरी पूरी एक गृहस्थन को वहां खींच ले गया? किसी को पता चल जाए तो क्या हो? सोचती तो वह हमेशा ही परवेज़ के बारे में थी। कहते हैं पहले प्यार की याद ज़िंदगी भर ताजा रहती है।

टेक्नीकली आलिया का वह पहला प्यार था भी कि नहीं, यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है।

बात इतनी पुरानी जो थी। हां, यह कह सकते हैं कि वो नाज़ुक एहसास शायद पहली बार उसी इंसान के लिए जागा था। कोई हमेशा आपका ध्यान रखे, अपने हर ढंग से एहसास दिलाए कि वह आप की बहुत परवाह करता है, यह प्यार नहीं तो और क्या है! और तो और उसकी अम्मी भी तो आलिया को बहुत चाहती थीं। रिश्ते में थी तो वह आलिया की दूर की मुमानी थीं, पर बचपन से ही उस पर प्यार लुटाती थीं। रिश्ता कुछ यूं था कि आलिया की नानी और परवेज़ की दादी सगी बहने थीं और उनकी शादी एक ही परिवार में छोटे-बड़े भाई से हुई थी। परवेज़ और आलिया का घर भी एक ही मुहल्ले में था।

गर्मियों की छुट्टियों में जब मुमानी अपने मायके लखनऊ जातीं तो आलिया के लिए खिलौने ज़रूर लातीं। आलिया की यादों में वो प्लास्टिक के बने छोटे-छोटे सफ़ेद रंग के कप-प्लेट आज भी छपे हुए हैं। आलिया और परवेज़ बचपन के साथी थे। सगे सखा थे। 'घर-घर' खेलने में आलिया का पार्टनर हमेशा परवेज़ ही बनता। अगर कोई आलिया से लड़ाई करता तो परवेज़ उसके सामने ढाल बनकर खड़ा हो जाता। आलिया को जब पढ़ना भी नहीं आता था, तब परवेज़ उसे कामिक्स पढ़-पढ़कर सुनाया करता था। बिना आलिया को खिलाए कोई चीज़ उसके गले से नीचे न उतरती। यहां तक कि वह स्कूल के टिफिन से भी उसके लिए कुछ ज़रूर बचाकर लाता। मुमानी बड़े चाव से इस 'हंसों के जोड़े' को देखा करतीं और बड़े होकर आलिया को अपनी बहू बनाने के सपने संजोया करती। आलिया और परवेज़ इस सबसे अनजान अपनी दोस्ती में खोए रहते। उम्र पंख लगाकर उड़ रही थी। छोटे-छोटे खिलौनों की जगह भारी-भरकम बस्तों ने ले ली थी। मुमानी बड़े चाव से पुरानी बात दोहराती और आलिया की अम्मी को 'ठीकरे की मांग' समय-समय पर याद दिलाती रहतीं।

पहले मुसलमानों में एक परंपरा काफ़ी प्रचलित थी। जिसे 'ठीकरे की मांग' कहा जाता था। ठीकरे की मांग का अर्थ होता था कि लड़की के जन्म के समय ही उसकी चाची, मामी, मौसी या ताई में से कोई अपने बेटे के लिए उसका रिश्ता मांग ले। यह उस जमाने की बातें हैं, जब लोग अपनी दी हुई ज़बान पर टिके रहते थे। और बरसों-बरस बीत जाने पर भी अपने दिए वचन निभाते थे। या यूं कहें कि तब शायद वचन निभाना आसान होता रहा होगा। खैर, 'ठीकरे की मांग' की अधिक गहराई से पड़ताल की जाए कि इस अटपटी रस्म का नाम 'ठीकरे की मांग' कैसे पड़ा? इसके लिए इसके शाब्दिक अर्थ को समझना होगा। ठीकरा मतलब टूटा हुआ मटका। पुराने जमाने में आमतौर पर बच्चों का जन्म घर में ही होता था और होने वाले बच्चे के क़रीबी रिश्तेदार जैसे चाची, ताई, मामी, मौसी वग़ैरह उस समय वहां मौजूद होती थीं। बच्चे का जन्म होने पर यदि होने वाला बच्चा लड़की है, और सुंदर है, तो उन रिश्तेदार महिलाओं में से कोई बिना देर किए झट से उसका हाथ अपने बेटे के लिए मांग लिया करती थी। इसे ही 'ठीकरे की मांग' कहा जाता था। पर यहां तो सवाल ठीकरे से है। इस सब में ठीकरा कहां फिट होता है? आलिया ने भी एक बार अपनी मां से यही सवाल पूछा था। तब मां ने समझाया था, "बेटी पहले जमाने में जनने-जापे में डस्टबिन (ठीकरा) के रूप में टूटे हुए मटके का

इस्तेमाल किया जाता था। वहीं से यह शब्द इस परंपरा से जुड़ गया। अब तो घर में किसी की डिलिवरी होती नहीं है, इसलिए अब यह केवल नाम भर रह गया है।"

पर आलिया का जन्म तो अस्पताल में हुआ था। तो फिर मुमानी क्यों कहती रहती हैं कि आलिया तो मेरे परवेज़ के लिए 'ठीकरे की मांग' है। आलिया को कुछ समझ नहीं आया। शायद ठीकरे की मांग में ठीकरा सिंबोलिक रूप में ही कहा जाता है। और फिर यह तो दिलों के मेल की बात है, परिवारों के बीच आपसी मुहब्बत की बात है। आलिया को याद नहीं पड़ता कि किसने बताया था, पर एक बार जब बड़ी नानी बहुत बीमार थीं और अल्लाह को प्यारी होने वाली थीं, तब उन्होंने भी मुमानी की इस 'ठीकरे की मांग' पर अपनी रजामंदी की मुहर लगाई थी। अपनी आख़री ख़्वाहिश के तौर पर अम्मी से हामी भरवा रही थीं बेचारी बड़ी नानी। पर अम्मी ने बड़ी नानी को कोई वचन नहीं दिया था। पर हम तो बात कर रहे थे, उस मासूम मुहब्बत की जिसे अभी परवान चढ़ना बाक़ी था। परवेज़ की केयर और मुमानी की मिठास भरी बातें आलिया को बहुत अच्छी लगतीं। आलिया के अपने घर के मिलिट्री माहौल से बिलकुल अलग था यह सब। मुमानी चुपके से आलिया को पैसे देकर झूला झूलने भेजतीं, उसे अपने हाथों से खाना खिलातीं, उसकी चोटियां बनातीं। उसके लिए सुंदर-सुंदर झालर वाली फ्राकें सिलतीं। सर्दियों में उसके लिए स्वेटर भी बुनतीं। वो भी क्या दिन थे!

मामू और मुमानी एक परफेक्ट कपल थे। उनके पास रूपये पैसे ज़्यादा नहीं थे, पर ख़ुशियां अपार थीं। कम में भी ख़ुश रहने की कला उन्हें बख़ूबी आती थी। कमाने वाले एक फ़क़त मामू और खाने वाला पूरा कुनबा। ज़बरदस्ती की ज्वाइंट फेमली। मुमानी के सिर पर बैठी उनकी बड़ी बेवा ननद और उनकी आधा दर्जन बेटियां। सब उन्हें बड़ी आपा कहते थे। ग़ज़ब की तेज़-तर्रार और ज़ुबान की कड़वी औरत। बड़ी आपा ने भी पूरी ज़िम्मेदारी से 'बड़ी' होने का ज़िंदगी भर फ़र्ज़ निभाया। मुमानी की सास, बड़ी नानी तो पहले ही अल्लाह को प्यारी हो चुकी थीं। पर उनकी कमी को पूरी करने के लिए बड़ी आपा तो ज़िंदा थीं। पर मामू और मुमानी एक-दूसरे को बहुत चाहते थे। दुनिया की क़ातिल निगाहों से बचकर वे रोमांस करते। एक-दूसरे का ख़्याल रखते। और यह सब देख ननदों की टोली जल-भुनकर ख़ाक हुई जाती। बड़ी आपा ठंडी आहें भरतीं और दबी ज़ुबान कहतीं, "अये बहना, कैसी बेग़ैरती छाई है!"

पर मामू-मुमानी पर इन तानों का कोई फ़र्क़ न पड़ता। बल्कि मुमानी भी कम मज़ेदार न थीं। वह जलने वालों को और जलाने में विश्वास रखती थीं। मुमानी मामू को प्यार से 'ख़ान' कहकर पुकारतीं। वे दोनों आंखों-ही-आंखों में बातें किया करते। लोगों से भरे इस घर में मुमानी के हिस्से में महज़ एक कोठरी ही आई थी। पर वह कोठरी ही उनका जहान थी। हालांकि मुमानी बड़े घर की बेटी थीं, पर उन्हें कभी भी शिकायत करते नहीं देखा गया। मामू जब दोपहर को घर में खाना खाने आते तो मुमानी उनके आगे-पीछे घूमा करतीं। उनके नहाने का पानी रखतीं। मामू आंगन में नल के पास ही बैठकर नहाते और अपना गीला अंडरवियर वहीं छोड़कर चले जाते। जिसे बाद में मुमानी बड़ी तत्परता से

धोतीं और इसे देखकर ननद ब्रिगेड की जान जलती। वे आंखों-ही-आंखों में एक दूसरे से मुमानी की बुराइयां करतीं।

बड़ी आपा कहतीं, "अये बहना... ब्याह तो हमारा भी हुआ था... इनका तो न्यारा हुआ है।" पर मुमानी की सेहत पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

आलिया को तब यह बातें समझ में नहीं आती थीं, पर अब बख़ूबी आती हैं। पति का ख़्याल रखना आलिया ने मुमानी से ही सीखा है। एक फ़रमाबर्दार बीवी और ख़ूब लाड़-प्यार करने वाली मां का गुण उसे मुमानी से ही विरासत में मिला है। वर्ना आलिया की अम्मी और खालाएं तो बड़ी ही आधुनिक सोच वाली नारियां रही हैं। इस ख़ानदान की औरतों पर नारीवादी सोच हमेशा से हावी रही है। उन्होंने पुरुषों के साथ बराबरी की मांग कभी नहीं की, बल्कि ख़ुद को हमेशा उनसे बेहतर ही माना है। इस सोच के चलते उनमें से एक भी अच्छी बीवी साबित नहीं हुई। इनका बस नहीं चला, वर्ना ये तो औलाद भी अकेले पैदा कर लेतीं। मुमानी एक अच्छी बीवी और प्यार करने वाली मां थीं, जबकि आलिया की अम्मी स्वभाव से हिटलर थीं। बच्चों को ज़्यादा लाड़ लड़ाने के सख़्त ख़िलाफ़। इसीलिए भी मुमानी से मिला लाड़-प्यार आलिया को बहुत सुहाता था। सब कुछ बहुत अच्छा चल रहा था। मुमानी परवेज़ और आलिया को देसी घी के चीनी के मीठे पराठे पका-पकाकर प्यार से खिलातीं। आलिया को लगता कि ज़िंदगी बस ऐसे ही चलती रहे। इस परिवार में सब एक दूसरे से कितना प्यार करते हैं! उसे लगता था कि जैसे वह भी इसी परिवार का एक हिस्सा है। वह परवेज़ में अपने मामू की छाया देखती और परवेज़ भी तो अपने अब्बू की प्रतिमूर्ति था। उतना ही प्यार करने वाला और सबका ध्यान रखने वाला एक सेंसिटिव इंसान।

आलिया ने ख़्वाबों में कितनी ही बार ख़ुद को मुमानी के बावर्चीख़ाने में, जहां बैठकर मुमानी मामू के लिए खाना पकाती थीं, ख़ुद को परवेज़ के लिए खाना पकाते देखा था। पर ख़्वाब हमेशा सच नहीं होते। फिर भले ही क्यों न सुबह के वक़्त ही देखे हों।

फिर एक दिन ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि आलिया की नानी का हज पर जाने का नंबर आ गया। हज पर जाना किसी भी मुसलमान के लिए बड़े ही सौभाग्य की बात मानी जाती है। घर में हज पर भेजने की तैयारियां ज़ोरों से होने लगी। लोग गुलाब के फूलों का हार लेकर हज्जन नानी से मिलने आने लगे। यह एक रिवाज है कि हज पर जाने वाले से जब लोग मिलने आते हैं, तब वे अपनी हैसियत और नज़दीकी के हिसाब से तोहफ़े लाते हैं। हाजी जब हज से लौटकर आते हैं तो वह भी लोगों के लिए तोहफ़े लाते हैं। तबर्रुक यानी प्रसाद के रूप में मक्के मदीने से लाई खजूर और आबे-ज़मज़म दिया जाता है।

फिर वह दिन भी आ गया जब नानी को दिल्ली के हवाई अड्डे से हज के लिए रवाना होना था। पूरा ख़ानदान एक बस में भर कर दिल्ली की ओर चल पड़ा। छोटे शहरों में रहने वाले लोगों के लिए हाजी को दिल्ली तक छोड़ने जाने का बड़ा क्रेज़ होता है। वैसे, इसे कहते तो सवाब कमाना है, पर वास्तव में यह घूमने-फिरने का एक बहाना होता है। इसलिए हज पर जाने वाला एक होता है, लेकिन उसे विदा करने वाले पचासों। ख़ैर,

दिल्ली पहुंचकर हज़रत निजामुदद्दीन के दरगाह पर सब लोग आराम कर रहे थे। हालांकि, इस सफ़र में दो गुट बन गए थे। एक गुट जिसमें अम्मी, खालाएं, बाजियां थीं तो दूसरे में मुमानियां। मुमानियों वाला गुट अम्मी-खालाओं वाले गुट को फूटी आंख न सुहाता था। आलिया इन सबसे बेख़बर थी। वह तो मुमानी और परवेज़ के साथ घूमने में मस्त थी। दरगाह के आसपास के सजे बाज़ार में आलिया एक दुकान पर रुकी, और रंग-बिरंगी मालाएं देखने लगी।

मुमानी ने पूछा, "तुम्हें पसंद है?"

आलिया ने हां में सिर हिलाया, "पर मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं अम्मी से पैसे लेकर आती हूं।"

मुमानी ने आलिया को रोक लिया और बोलीं, "परवेज़ तुम क्यों नहीं आलिया को दिला देते यह माला!"

परवेज़ ने झट से अपनी जेब से दस का नोट निकालकर दुकानदार को दे दिया। परवेज़ की दिलाई माला पहने आलिया ख़ुशी से इतरा रही थी। सब वापस दरगाह के अंदर पहुंच गए। अम्मी की तेवरी चढ़ी हुई थी। मुमानी के साथ देख सख़्ती से पूछा, "कहां थीं तुम आलिया?"

"मुमानी के साथ यहीं बाज़ार में घूम रही थी।" अम्मी को यह जवाब कुछ ख़ास पसंद नहीं आया था। अम्मी को आलिया की मुमानी से नज़दीकी सुहाती न थी।

अब मुमानी तपाक से बोली, "देखो परवेज़ ने आलिया को कितनी अच्छी माला दिलाई है!"

अम्मी को जैसे मिर्च लग गई। आलिया आज तक यह नहीं समझ पाई कि मुमानी ने यह बात सचमुच में ख़ुश होकर कही थी या फिर अम्मी को नीचा दिखाने के लिए? हो सकता है मुमानी इस घटना के सहारे परवेज़ और आलिया के रिश्ते की ज़मीन तैयार करना चाह रही हों। पर मुमानी का इतना कहना हुआ कि अम्मी का मुंह ग़ुस्से से लाल हो गया। उस समय तो उन्होंने सब्र से काम लिया और ग़ुस्से में आलिया से कुछ नहीं कहा। पर बाद में, जो सबने मिलकर आलिया का कोर्ट मार्शल किया तो दिल्ली आने का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। घर के सब लोग नाराज़ थे आलिया से। सब उसे ऐसा एहसास करा रहे थे जैसे उससे कोई बड़ा पाप हो गया हो। मलामतों और हिदायतों के ऐसे दौर चले कि परवेज़ से बात करना तो दूर उसकी तरफ़ देखने की हिम्मत भी जाती रही। आलिया को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मुमानी उसके लिए पहले भी बहुत चीज़ें लाती रही हैं, तब तो किसी ने कुछ एतराज़ नहीं किया था, पर अब अचानक ऐसा क्या हो गया है? वह हैरान थी और परेशान भी। एक छठीं-सातवीं की बच्ची को यह सब क्या समझ में आता? अम्मी सोचती थी हममें और उनमें बहुत फ़र्क़ है, पर आलिया को यह फ़र्क़ कभी नज़र नहीं आया। उस माला को भी कमबख़्त दुश्मन ज़माने ने वापस करवा दिया था। आलिया के मुमानी के घर जाने पर पाबंदी लगा दी गई और उसे घर से दिल्ली हास्टल पढ़ने भेज दिया गया।

आलिया अपनी पढ़ाई में खो गई। स्कूल से कॉलेज का सफ़र तय कर लिया। लेकिन परवेज़ की मधुर याद उसके दिल के किसी कोने में छुपकर बैठी रही। सालों में कभी नानी के घर का चक्कर लगता तो परवेज़ की एक झलक पाने की आस सर उठाती। परवेज़ का घर तो नानी के घर से लगा ही हुआ था। पर वह कहीं दिखाई नहीं देता। इस बीच मामू का अचानक इंतक़ाल हो गया था, जिसकी वजह से परवेज़ को पढ़ाई छोड़ मामू की दुकान संभालनी पड़ी। वह रात को देर से घर में घुसता और सुबह जल्दी घर से निकल जाता। आलिया को मुमानी से केवल उसकी ख़बर ही मिलती। अब तक मुमानी भी शायद आलिया को अपनी बहू बनाने के सपने को बिसरा चुकी थीं। धन-दौलत की सदियों से चली आ रही इस दीवार ने यहां भी दो मासूम दिलों को मिलने से रोक दिया था। इस बीच दिल्ली के एक रईस ख़ानदान में आलिया का ब्याह हो गया।

शादी के बाद आलिया जब पांव फेरने पहली बार मेरठ अपने मायके आई तो फिर उसे नानी के घर जाने का मौका लगा। दिल में एक आस थी कि काश उसकी एक झलक ही मिल जाए। भारी-भरकम ज़ेवरों से लदी आलिया नानी के घर की दहलीज़ में दाख़िल होने के लिए जैसे ही परदा हटाती है तो सामने सफ़ेद कुर्ते-पजामे में परवेज़ को पाती है।

“या ख़ुदा! क्या क़ुबूलियत की घड़ी थी! इस वक़्त अगर कुछ और मांग लेती तो वह भी मिल जाता।”

जल्दबाज़ी में वह परवेज़ से टकराई और हड़बड़ाहट में कुछ बोल न पाई। घबराकर इधर-उधर देखा और बुदबुदाई, “हाय अल्लाह! किसी ने देख तो नहीं लिया!”

परवेज़ जा चुका था। आलिया के हाथ लगी तो बस उसके पसीने में घुली इत्र की ख़ुशबू और कुछ न कह पाने का मलाल।

वह जो कुछ सेकेंड का एहसास था, जब उसने परवेज़ को एक पुरुष के रूप में इतने नज़दीक महसूस किया था, किसी भी एहसास से बड़ा था। वो तो एक लम्हे को यह भी भूल गई थी कि अब उसकी शादी हो गई है।

इस घटना के बाद कई साल बीत गए। वह जब भी मायके जाती तो मुमानी वालों की ख़ैरियत लेती और ख़ामोशी से अपने बचपन के साथी के बारे में जानने की कोशिश करती। इस बार आलिया मेरठ आई तो पता चला कि पिछली ईद पर परवेज़ की भी शादी हो गई। यह जानकर उसे तसल्ली हुई। पर उसकी बीवी मुमानी को कोई ख़ास सुख नहीं देती है, यह जानकर अफ़सोस हुआ। परवेज़ ने अब कपड़े का एक शो रूम खोल लिया है। थोड़ी और जानकारी जुटाई तो शोरूम का नाम और पता भी मिल गया।

पिछले दो दिन से आलिया उसकी दुकान पर जाने का प्रोग्राम बना रही है। पर हर बार कोई-न-कोई पीछे लग जाता है, “उफ्फ, क्या मुसीबत है!”

वह मार्केट तो जाती है, पर इधर-उधर के फ़ालतू सामान लेकर वापस घर आ जा जाती है। सोचती है जब अकेली होगी तब जाएगी, लेकिन जाकर परवेज़ से कहेगी क्या... और कहने को है ही क्या?

कुछ नहीं, बस उसे क़रीब से देख लेगी और ख़ैर-ख़ैरियत पूछ लेगी। आज अकेले मौक़ा लग गया था बाज़ार जाने का। पर्स उठाया और पहुंच गई उसके शो रूम पर। रास्ते में सोचती हुई जा रही थी। अगर वह इस वक़्त दुकान पर नहीं हुआ तो! कहीं काम से गया हो और नहीं मिला तो! कहीं घर खाना खाने तो नहीं चला गया होगा!

जब शो रूम पर पहुंची तो देखा परवेज़ सामने ही काउंटर पर बैठा हुआ था। उसे देखते ही आलिया के चेहरे पर बचपन वाली ख़ुशी तिर आई। बरसों पुरानी यादें ताजा हो गईं। क्या कहती, "तुमसे मिलने आई हूं।" नहीं, वह ऐसा कैसे कह सकती है!

"व.. वो कुछ मर्दाना कुर्ते लेने हैं।"

परवेज़ ने रस्मी तौर पर पूछा, "कब आईं? और सब ख़ैरियत?"

इतना ठंड़ा रेसपान्स! आलिया का दिल बैठने लगा। मानो, यह कोई और बोल रहा है। मैं जिसकी तलाश में आई थी, मेरे बचपन का वह साथी यह तो नहीं है!

परवेज़ ने अपने सेल्समैन से कहा, "मैडम को अंदर ले जाकर कुर्ते दिखा दो।"

और वह अपनी जगह से हिला तक नहीं। वह ख़ामोशी से सेल्समैन के पीछे-पीछे अंदर चली गई। दिल के किसी कोने में अब भी एक आस बाक़ी थी कि वह अंदर आएगा, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

आलिया ने थोड़ी हिम्मत जुटाई और सेल्समैन से झिझकते हुए कहा, "वह जो बाहर काउंटर पर बैठे हैं ना, उन्हें अंदर बुला दीजिए, हमारे रिश्तेदार हैं वे।" सेल्समैन गया और अकेले ही वापस आ गया।

आलिया ने पूछा, "क्या हुआ? आ रहे हैं वे?"

सेल्समैन ने कहा, "नहीं, वह फ़ोन पर बात कर रहे हैं।" आलिया काफ़ी देर तक कपड़े उलट-पुलटकर देखती रही, पर वे नहीं आए। हार कर कुछ कपड़े पसंद किए और फिर मुड़कर चोर निगाह से परवेज़ की तरफ़ देखा। लेकिन परवेज़ आलिया से बेपरवाह अब भी फ़ोन पर बिजी था। मानो जैसे आलिया वहां हो ही नहीं।

"ऐसी बेज़ारी!"

"फ़ोन इतना ज़रूरी है.... कि दो घड़ी बात भी नहीं कर सकता इंसान!"

हारकर आलिया बिल बनवाने काउंटर पर आ गई। फिर हिम्मत जुटाई और पूछा, "मुमानी कैसी हैं?"

उसने मुख़्तसिर-सा जवाब दिया, "ठीक हैं।"

"और घर पर सब लोग?" आलिया ने पूछा।

"सब ठीक हैं।" फिर वही ठंडापन।

आलिया ने बिल पे किया और शापिंग बैंग उठाकर भारी मन से बाहर आ गई। आज आलिया और परवेज़ के बीच प्रेम की जो नाज़ुक डोर थी वह एक झटके से टूट गई थी। काश! वह यहां नहीं आती। वह जो एक भरम था, वह हमेशा बना रहता तो अच्छा होता। जिसकी याद आलिया ने इतने साल दिल में संजोकर रखी थी, उसे तो आलिया याद भी नहीं थी। जब आलिया दुकान से बाहर आ रही थी, तो उसके कानों में बग़ल की दुकान में

बजने वाली ग़ज़ल गूंजने लगी।

वह जो हममें तुममें क़रार था
तुम्हें याद हो कि न याद हो...

अरविंद की सुधा

अस्पताल का लंबा वीरान कॉरिडोर। कॉरिडोर के एक सिरे से आती धूप भी अब धीरे-धीरे मंद होकर ख़त्म हो रही है। वही बेंच पर बैठी निःशब्द सुधा हाथ पर हाथ धरे किसी अनहोनी के होने का इंतज़ार कर रही है। जब दर्द गहरा हो तो ईश्वर इंसान को उससे लड़ने की शक्ति भी बड़ी दे देता है। जिसका इंसान को ख़ुद भी पता नहीं होता। इंसान सोचता है कि अगर ऐसा हुआ तो वह बर्दाश्त नहीं कर पाएगा और न जाने क्या कर बैठेगा? सुधा ने भी कहां सोचा था कि अरविंद के बिना उसे कभी जीना होगा! वह अकसर अरविंद से भावुक होकर कहा करती थी, “अरविंद तुम्हारे बिना मैं एक दिन भी जी नहीं सकती।” पर आज देखो अरविंद अपनी अंतिम सांसें गिन रहा है और सुधा उसे मरता हुआ देख रही है। ऐसे देखते हुए उसे कुछ भी नहीं हुआ। वह तो हट्टी-कट्टी बैठी है।

उसे तो बुख़ार तक न आया। सुधा ज़िंदा है और ख़ुद के ज़िंदा रहने पर बहुत शर्मिंदा भी है। इंसान को शायद सबसे ज़्यादा ग़लतफहमी अपने बारे में ही होती है। वह आज सोच रही है कि क्या इंसान को अपनी हदें मालूम भी होती हैं?

उसे रात के इस घनघोर सन्नाटे में किसी फ़िल्म के सीन की तरह वह सब कुछ याद आ रहा है। पुराना जोधपुर जिसे अंग्रेज़ ब्लू सिटी के नाम से पहचानते हैं, राजपूतों के इसी आन-बान-शान वाले इस शहर की गलियों में खेलकूद कर सुधा बड़ी हुई थी। सुधा का संबंध राजपूत परिवार से था और अरविंद का ताल्लुक भी राजपूत ख़ानदान से ही था। पहली बार अरविंद और सुधा वैसे ही मिले थे जैसे कि शादी के लिए परिवार वाले लड़का-लड़की को मिलवाते हैं। सुधा से भी वही रूटीन सवाल पूछे गए थे जैसे कि हर लड़की से होने वाली ससुराल के लोग पूछा करते हैं। चूंकि दोनों के ही परिवार वाले आधुनिक सोच रखते थे, इसलिए शादी की रजामंदी से पहले लड़का-लड़की को अकेले में बातचीत करने की इजाज़त भी दे दी गई थी। सुधा बहुत नर्वस थी। उसे तो क्या ही पूछना था? सोच रही थी कि लड़का न जाने क्या सवाल कर दे? पर अरविंद ने अपनी सरल और सहज बात-चीत से माहौल को हल्का बना दिया था।

लग रहा था कि अरविंद इंटरव्यू लेने नहीं देने आया हो। उसने बिना रुके अपने बारे में सुधा से सब कुछ कह दिया था। साथ ही यह भी बता दिया था कि उसका परिवार वैसे तो आधुनिक विचारों वाला है, पर अपने संस्कार निभाने में कोताही नहीं करता है। गांव में सब परिवार की परंपराओं का पालन करते हैं, जिनका सम्मान तुमको भी करना होगा। बाक़ी तो तुम मेरे साथ मुंबई में रहोगी, वहां तुम जैसे चाहो वैसे रहना। सुधा को अरविंद की साफ़गोई भा गई थी और इस तरह सुधा और अरविंद परिणय सूत्र में बंध गए थे।

अरविंद सबका ध्यान रखने वाला और उसूलों को मानने वाला इंसान था। उसके दिल में बहुत करुणा थी। वह सड़क पर घायल हुए जानवर को भी घर उठा लाता और उसकी मरहम पट्टी करता। वह परिवार के एक एक सदस्य का ख़्याल रखता। उससे किसी का दुःख नहीं देखा जाता। परोपकार की भावना उसमें कूट-कूट कर भरी थी। इसीलिए अरविंद ने अपने अंगों के दान के लिए अपना पंजीकरण करवाया हुआ था। जब सुधा को यह पता चला था तब वह कितना नाराज़ हुई थी, “यह क्या पागलपन है अरविंद!”

तब अरविंद ने सुधा को बड़े लाड़ से समझाया था, “देखो सुधा, मरने के बाद इस शरीर को मिट्टी में मिल जाना है। अगर मरने के बाद आपके शरीर के अंग किसी को नया जीवन दे सकते हैं तो उसमें हर्ज ही क्या है? हम सबको अपने अंगों का दान करना चाहिए।” सुधा मन-ही-मन सोचती कि उसे एक ऐसा इंसान जीवन साथी के रूप में मिला है जो अपनों के बारे में तो सोचता ही है, साथ ही उन लोगों के बारे में भी सोचता है जिनको वह जानता भी नहीं है। अरविंद हर पल को जीने में विश्वास रखता था। सुधा जो भी पकाती वह बड़े चाव से ख़ुश होकर खाता। वह सुधा की छोटी-से-छोटी बात का ख़्याल रखता। उसे कभी नाराज़ होने का मौक़ा न देता। और कभी ग़लती से सुधा अरविंद से रूठ जाती तो वह उसे मनाने के लिए लाख जतन करता। सुधा नींद में भी

उससे पीठ न मोड़ पाती। वह करवट ले दूसरी ओर आ जाता और बड़े लाड़ से सुधा को उलाहना देता, “मुझ से पीठ न मोड़ा करो। लगता है जैसे किसी और की बीवी के साथ सो रहा हूं।” एक दिन रात में सुधा के सिर में बहुत दर्द था। घर में बिजली भी नहीं आ रही थी। इन्वर्टर भी कुछ घंटे चलकर दम तोड़ चुका था। कुछ बड़ा फॉल्ट हुआ था। गर्मी से सुधा का बुरा हाल था और सिर भी फटा जा रहा था। अरविंद ने सुधा का सिर अपनी गोदी में रख हाथ से पंखा झलना शुरू किया। सुधा ने बहुत मना किया पर अरविंद ने उसकी एक न सुनी। वह रात भर सुधा को पंखा झलता रहा। सुधा की आंख कब लग गई उसे कुछ पता नहीं। सुबह जब आंख खुली तो सुधा ने अरविंद को वैसे ही बैठे पाया। उसके हाथ में पंखा था और वह सारी रात जागता रहा था। सुधा का दिल भर आया। उसने दोनों हाथ उठाकर ऊपर वाले का शुक्र गुज़ारा कि भगवान ने उसे ऐसा सच्चा साथी दिया है। ऐसे न जाने कितने क़िस्से हैं जिन्होंने अरविंद और सुधा को दो जिस्म एक जान बना दिया था। चोट अगर अरविंद को लगती तो दर्द सुधा को होता। यह थी तो अरेन्ज मैरिज, पर दोनों को देखकर लगता जैसे यह लव मैरिज हो। सुधा को अरविंद ज़्यादा दिनों के लिए मायके भी न जाने देता। वह हफ़्ते भर को जाती और दूसरे ही दिन से अरविंद के फ़ोन आने लगते। “सुधा अब बस भी करो। कितना रहोगी जोधपुर में! मेरा अकेले मन नहीं लग रहा है। मैं तुम्हारी कल के प्लेन की टिकट मेल कर रहा हूं। बस्स.. बहुत हुआ अब वापस आ जाओ।”

सुधा का भी जोधपुर में जी कहां लगता था! वह अटैची भर कर कपड़े ले कर जाती और दूसरे ही दिन वापसी की तैयारी करने लगती। घर की भाभियां भी अपनी इस ननद को ख़ूब छेड़ती और उलाहना देतीं। सुधा हंस-हंसकर सबके ताने सुनती। न सहेलियों से मिल पाती और न ही शॉपिंग कर पाती। शॉपिंग की लंबी लिस्ट बड़ी भाभी को थमा आती। बेचारी बड़ी भाभी लाड़ली ननद की शॉपिंग करतीं और फिर सारा सामान कुरियर करवातीं। ज़िंदगी बड़े मज़े से कट रही थी। अरविंद का कोई दोस्त न था और अरविंद से शादी के बाद सुधा की दोस्ती किसी सहेली से बची न थी। टाइम ही नहीं था उन दोनों के पास किसी और के लिए। वह दोनों ही एक-दूसरे के दोस्त थे, मन के मीत थे, हमदम थे, हमनवां थे।

सुधा ने अरविंद से नौकरी करने की इच्छा जताई तो उसने सहर्ष मान लिया। अरविंद सुधा को हर चीज़ में सपोर्ट करता पर वह सुधा को आत्मनिर्भर बनाना चाहता था। वह कभी सुधा के साथ इंटरव्यू दिलवाने नहीं गया। उसने सुधा को अपने दम पर खड़े होना सिखाया। अरविंद के बड़े-बड़े कॉर्पोरेट्स में अच्छे कॉन्टेक्ट्स थे, पर उसने सुधा की सिफ़ारिश कभी नहीं की। वह चाहता था कि सुधा जो भी हासिल करे अपने दम पर करे।

महानगर में नौकरी मिलना कोई मुश्किल बात न थी। पर एक अच्छी नौकरी मिलना वाक़ई मुश्किल काम था। सुधा इंटरव्यू देने जाती। सुधा ने मन मुताबिक़ नौकरी करने के लिए कई नौकरियां पकड़ी और छोड़ीं। अरविंद उसे हताशा के समय समझाता, “देखो सुधा नौकरी करना तुम्हारा शौक़ है ज़रूरत नहीं। मैं अपने घर को बहुत अच्छे से चला

सकता हूं। मेरे मानना है कि किसी भी महिला को नौकरी करते हुए अपनी ख़ुशी और आत्मसम्मान से समझौता नहीं करना चाहिए।" अरविंद के ऐसे संवाद सुधा में असीम ऊर्जा का संचार कर देते। उसे हिम्मत से आगे बढ़ने और सख़्त फ़ैसले लेने की हिम्मत देते।

सुधा और अरविंद अपनी वैडिंग एनिवर्सरी एक अनोखे अंदाज़ से मनाते। सुधा को सफ़ेद रंग के रजनीगंधा के फूल बहुत पसंद थे। अरविंद अपने बेडरूम को रजनीगंधा के फूलों से भर देता। कमरा ऐसे सजाता जैसे आज ही उनकी सुहागरात हो। सुधा अरविंद की पसंद की साड़ी पहनती जैसे वह आज ही ब्याह कर आई हो इस घर में। ढेर सारी मोमबत्तियों की रोशनियों में कमरा और भी रोमांटिक हो जाता। सुधा अरविंद के चौड़े सीने पर बाईं ओर सिर रख अरविंद के दिल की धड़कन सुना करती। अरविंद की मज़बूत बांहों के घेरे सुधा में सुरक्षा का भाव जगाते। अरविंद की मज़बूती और सुधा की कोमलता एक-दूजे में गड़मड़ हो जातीं। प्रेम का ऐसा सुंदर विलय देख आसमान का चांद भी शरमाकर बदली में मुंह छुपा लेता। एक-दूजे में खोया यह जोड़ा प्रेम के चढ़ते ज्वर में कभी डूबता तो कभी उतराता। प्रेम उन्माद में पलकें भारी हो जातीं। नींद की झपकी दो थके-मांदे प्रेम पथिकों को दबोच लेती। फिर रात के किसी पहर अरविंद की आंख खुलती तो उसे लगता कि वह सो क्यों गया? अपने पहलू में सोई सुधा उससे बड़ी मासूम लगती। सुधा की मासूमियत पर अरविंद भर-भर कर प्यार उड़ेलने लगता। चुंबनों की वर्षा सुधा की आंख खोल देती। प्रेम सागर में डुबाने के लिए उसके साथी का आह्वाहन। वह ख़ुद को रोक न पाती। अगली सुबह शांत, निर्मल, धुली-धुली-सी लगती। जैसे बारिश के बाद की सुबह। तन पर बारिश ही तो थी। प्रेम की बारिश। सुख की बारिश।

हर बीतते साल के साथ उनका रिश्ता और भी मज़बूत होता जा रहा था। वह हर साल अपनी शादी की सालगिरह ऐसे ही मनाते और फिर पूरे साल उस दिन के फिर से आने का इंतज़ार करते। यह सीक्रेट था सुधा और अरविंद का। उनके प्रेम का।

पर न जाने किसकी नज़र लग गई इस जोड़े को। अरविंद कल ही तो ऑफ़िस के काम से पुणे के लिए कार लेकर निकला था, आज उसे वापस आना था। सुधा सुबह से ही उसके आने का इंतज़ार कर रही थी। दोपहर में सुधा की अरविंद से कई बार बात भी हुई थी। वह बहुत ख़ुश था और ड्राइविंग का मज़ा ले रहा था। पुणे और मुंबई एक्सप्रेस वे पर लोगों की स्पीड अनजाने में ही बढ़ जाती है। अरविंद को क्या पता था कि एक बेक़ाबू ट्रक उसकी गाड़ी से ऐसे आ टकराएगा कि आनन-फानन में सब ख़त्म हो गया था। अरविंद की गाड़ी चकना चूर हो गई थी। इतना भीषण हादसा। अरविंद को बुरी तरह ज़ख़्मी हालत में अस्पताल में भर्ती करवाया गया था। किसी तरह सुधा तक ख़बर पहुंची थी। अरविंद को बहुत गंभीर चोटें आई थीं। डाक्टरों ने सारी कोशिश कर के देख ली थीं, पर सफलता नहीं मिल रही थी।

आईसीयू के दरवाज़े के जल्दी-जल्दी खुलने-बंद होने से सुधा की तंद्रा टूटी। डॉक्टर ने आईसीयू से बाहर आकर निराश भाव से सुधा से कहा, "हमने पूरी कोशिश की पर..

इनके पास वक़्त बहुत कम है। आप अंदर जा कर मिल लीजिये।”

सुधा रोए जा रही थी। इतना कमज़ोर, इतना लाचार, इतना मजबूर उसने अपने-आप को कभी महसूस नहीं किया था। बड़ी मुश्किल से ख़ुद को संभाला, आंसू पोंछे और अंदर गई। अरविंद लाइफ सेविंग मशीनों के तारों के जंजाल के बीच बिस्तर पर पड़ा था। उसके मुंह पर ऑक्सीजन मास्क लगा हुआ था। उसने इशारे से मास्क हटाने के लिए कहा। शायद वह कुछ कहना चाहता था। डॉक्टर ने नर्स को मास्क हटाने का इशारा किया। अरविंद ने उखड़ती सांस के साथ कहना शुरू किया, “सुधा मेरे जाने का वक़्त आ गया है। तुमको अकेला छोड़ कर जा रहा हूं, हो सके तो मुझे माफ़ कर देना। क्या तुम मेरी अंतिम इच्छा पूरी करोगी?” अरविंद आशा भरी आंखों से सुधा को देख रहा था। सुधा ने सिसकते हुए हां में सिर हिलाया।

“तुमको याद है न, मैंने अपने शरीर के अंगों के दान के लिए पंजीकरण करवाया हुआ है। तुम मेरे बाद मेरी इस इच्छा को पूरा होने दोगी। मैं जानता हूं। यह आसान नहीं है। पर सोचो, मेरे बाद अगर मेरे दिल किसी ज़रूरतमंद इंसान को जीवन दे सकता है तो इससे ज़्यादा ख़ुशी की बात और क्या होगी हमारे लिए। वैसे भी तो इस शरीर को मिट्टी में ही तो मिल जाना है। तुम ऑर्गेन डोनेशन बैंक से संपर्क करो अभी, मेरे पास वक़्त कम है। मेरी सांस की डोर टूटने से पहले उन तक ख़बर पहुंच जानी चाहिए।”

अरविंद दुनिया से विदा होने के वक़्त भी लोगों का भला करने की सोच रहा था। इस देश में कितने ही ऐसे लोग होते हैं जो मौत और ज़िंदगी के बीच झूल रहे होते हैं और उन्हें कोई अंग दान करने वाला नहीं मिलता।

सुधा ने तत्परता दिखाई और अंगदान बैंक से संपर्क किया। इन बैंकों में अर्ज़ियां देने वाले बड़ी संख्या में इंतज़ार में लगे होते हैं और दान करने वाले बहुत कम। यहां जैसे ही कोई डोनर संपर्क करता है तो पूरा तंत्र सक्रिय हो जाता है। कितनी विचित्र बात है कि किसी की मौत किसी के लिए ज़िंदगी की ख़बर बन जाती है। जिसे अरविंद का हृदय प्रत्यारोपित किया जाना था, वह व्यक्ति इसी शहर में था। आनन-फानन में सारे इंतज़ाम किए गए। तब तक अरविंद की इच्छा शक्ति ने ही उसकी सांसों की डोर को मज़बूती से थामे रखा।

सब कुछ इतनी सहजता से संपन्न हुआ जैसे यह सीन पहले से ही लिखा जा चुका था। अरविंद की विदाई के साथ घर की रौनक़ भी चली गई। एक-एक कर सारे रिश्तेदार भी विदा हो गए और पीछे रह गई अकेली सुधा और अरविंद की मौजूदगी का अहसास करवाती घर की एक-एक चीज़। भयानक सन्नाटे और उनमें डूबती सुधा। इन सन्नाटों को तोड़ने अब कोई नहीं आएगा। दरवाज़े पर दस्तक की कोई उम्मीद भी बाक़ी न बची थी। वह शाम को घर आकर घर में बंद हो जाती। दिन तो किसी तरह ऑफ़िस में गुज़र जाता पर रात काटे न कटती। पूरी-की-पूरी रात आंखों में कट जाती। सुधा बिस्तर पर तन्हा लेटी सूनी आंखों से आसमान को तका करती। कभी जहां दो जोड़ी आंखें सुनहरे भविष्य के सपने देखा करती थीं। आज वह वहां अकेली है। दिन हफ़्ते और हफ़्ते महीनों में बदल

गए। सुधा का जी कभी इतना घबराता जैसे वह कोई अबोध बालक हो और भीड़ से भरे किसी मेले में बिछड़ गई हो। वह चीख़ें मार-मार कर रोती पर कोई चुप करवाने न आता।

ख़ाली घर में अपनी सिसकियों की गूंजती हुई आवाज़ें उसे और उदास कर देतीं। एक दिन रात के सन्नाटे में वह सोच रही थी कि कुछ दिनों में तो उसकी वैडिंग एनिवर्सरी आने वाली है। और साथ ही याद आ गया वो सुंदर समय जब सुधा अरविंद के दिल की धड़कने सुना करती थी। पर अब ऐसा नहीं होगा... वह अब कभी भी अरविंद के दिल की धड़कन नहीं सुन सकेगी... उसकी रुलाई एक बार फिर फूट पड़ी पर तभी उसे ख़्याल आया।

नहीं, यह सच नहीं है। वह एक बार फिर अरविंद के दिल की धड़कनें सुन सकती है। अरविंद ज़िंदा है। वह किसी और के दिल में धड़क रहा है.. वह ज़रूर उसकी धड़कनें सुनेगी। वह कल ही अस्पताल जाकर उस आदमी की जानकारी जुटाएगी जिसे अरविंद का ह्रदय प्रत्यारोपित किया गया है। यह ख़्याल ही उसके लिए दुख के घोर अंधकार में जीने के लिए रोशनी की एक किरन बन जाता है।

अगले दिन सुधा ने अस्पताल से जानकारी जुटाई। उसका नाम अश्विन है और लोनावला में रहता है। अगले पल सुधा की उंगलियां फ़ोन पर अश्विन का नंबर डायल कर रही थीं बिना किसी विलंब के। फ़ोन उठाने वाला अश्विन ही था। सुधा ने एक सांस में ही अपना परिचय दे डाला। सुधा ने अश्विन से मिलने की इच्छा जताई और साथ ही यह भी बता डाला कि वह और अरविंद किस तरह हर साल अपनी वैडिंग एनिवर्सरी मनाते थे। सुधा उसी दिन अश्विन से मिलना चाहती है। अश्विन भी बिना किसी इनकार के सब बातें ऐसे मानता जा रहा था जैसे सुधा को वह न जाने कबसे जानता हो। सुधा की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। अब उसे इंतज़ार था उस दिन का जब वह अश्विन से मिलेगी। बस अब यही एक आशा की किरन सुधा के नीरस जीवन में बची थी। दिन थे कि बीत ही नहीं रहे थे। फिर वह वैडिंग एनिवर्सरी का दिन भी आ गया जब सुधा को लोनावला जाना था। उसने तैयारी की और जा पहुंची लोनावला की बस में। रास्ते सुंदर पहाड़ और हरियाली से ढके हुए थे। सुधा ख़ुश थी। कोई भय, कोई शंका न थी, उसके मन में।

किसी अजनबी से मिलने जा रही है, ऐसा ख़्याल एक बार भी नहीं आया था उसे। यह भी कि लोग क्या कहेंगे? अश्विन क्या सोचता होगा? कुछ भी तो नहीं सोचा सुधा ने। प्रेम के हाथों मजबूर सुधा बस चली जा रही थी।

अश्विन उसे लेने बस स्टॉप पर पहले ही आ चुका था। अश्विन के लिए भी यह अनुभव बड़ा ही विचित्र था। जिस महिला को उसने कभी देखा नहीं, जाना नहीं, उसकी सारी बातें वह मान कैसे गया! उसे घर भी बुला लिया। अश्विन हैरान है। वह ऐसा क्यों कर रहा है? यह वह अश्विन तो नहीं। बस स्टॉप पहुंचने से पहले सुधा के लिए खाने-पीने का सामान ख़रीदने उसके क़दम स्वतः ही स्टोर में घुस गए थे। कुकीज़ और जूस के कुछ पैक उठाए वह बस स्टॉप पहुच गया। बस से उतरते हुए यात्रियों में सुधा को पहचानने में अश्विन को ज़रा भी देर न लगी। नज़दीक आकर कहा, “मैं अश्विन। आइए।”

और सुधा भी ख़ामोशी से अश्विन के पीछे हो ली। दोनों को ही नहीं लगा कि वह

पहली बार मिले हैं। कार तक पहुंचकर अश्विन ने पीछे की सीट का दरवाज़ा खोला पर इतनी देर में सुधा आगे की सीट पर बैठ चुकी थी। अश्विन ने ड्राइवर की सीट संभाली।

बारिश की हल्की फुहार ने उनका स्वागत किया। "आपके लिये पीछे पैकेट में कुछ खाने-पीने का सामान रखा है। आपने कुछ खाया न होगा। प्लीज, कुछ खा लें।" अश्विन ने सामने देखते हुए कहा।

"इन्हें कैसे पता चला कि मैंने कल से कुछ नहीं खाया है?" सुधा हैरान।

सुधा ने पैकेट खोला। पैकेट में सुधा की पसंद की कुकीज़ और उसी की पसंद का गोआवा जूस। सुधा स्तब्ध। इन्हें मेरी पसंद भी पता है! भला कैसे?

सुधा ने सुकून से ब्रेकफास्ट किया। पहाड़ों की ठंडी हवा सुधा को अच्छी लग रही थी। पहाड़ी घुमावदार रास्ते उसे हमेशा से ही पसंद हैं। पहाड़ों में बसे छोटे-छोटे गांव। सब कुछ कैनवास पर फैले रंगों से बनी पेंटिंग जैसी।

कुछ घंटों की यात्रा के बाद गाड़ी एक ख़ूबसूरत कॉटेज के बाहर आकर रुकी। बहादुर ने आकर सलाम किया। अश्विन ने सुधा से कहा, "आप आराम करें, थक गई होंगी। हम शाम को मिलते हैं।" वह गाड़ी स्टार्ट कर चला गया। सुधा देर तक वहां खड़ी उसकी गाड़ी को नज़र से ओझल होने तक एकटक देखती रही।

अश्विन बहुत समझदार है। वह समझता है कि सुधा को संभलने के लिए थोड़ा वक़्त चाहिए। और शायद उसको भी। जो भी हो रहा था वह अजीब था, अनोखा था। दो लोग जो कर रहे थे.. और जो करने जा रहे थे। उनका दिल ही उनसे करवा रहा था। यह कुछ ऐसा था जिसे शब्दों में ब्यान नहीं किया जा सकता है।

सुधा गेस्ट रूम में आ गई। थोड़ा-सा आराम करने के बाद वह फ्रेश हुई। फिर एक कप चाय पी और बिस्तर में आराम से बैठ गई। इस बीच न जाने कब वह सो गई। कितनी देर सोई कुछ याद नहीं। सपने में अरविंद आए थे और कह रहे थे, "कहां रह गई थी तुम सुधा?" सुधा का सपना और सच सब कुछ गड्डमड्ड हो गया था।

बहादुर ने दरवाज़े पर दस्तक दी और बताया कि साहब आपका इंतज़ार कर रहे हैं। आपकी इजाज़त हो तो वे आप से मिलने आ जाएं। सुधा ने इजाज़त दे दी और संभलकर बैठ गई। शाम हो गई थी, कमरे में अंधेरा हो चुका था। सुधा ने बिजली जलाई। अश्विन ने नॉक किया। "आ जाइये दरवाज़ा खुला है" सुधा बोली।

अश्विन अंदर आ गए। सुधा ख़ामोश। अश्विन ख़ामोश। किसी के पास कुछ भी तो नहीं था कहने सुनने को। अश्विन ने ख़ामोशी तोड़ी, "कहिए, क्या करना होगा मुझे?"

सुधा तो पहले ही फ़ोन पर सब बता चुकी थी। "कुछ नहीं। आप यहां लेट जाएं बस्स।" सुधा ने बिस्तर की ओर इशारा किया। रात का सन्नाटा। दो अजनबी। वह एक-दूसरे से प्रेम नहीं करते पर विश्वास करते हैं। कैसा विचित्र संयोग!

अश्विन बिना झिझक बिस्तर पर लेट जाता है। सुधा नज़दीक ही ज़मीन पर बैठ जाती है और हौले से अपना सिर अश्विन के सीने पर रख देती है।

धक.. धक...धक... ख़ामोशियों को चीर कर आती अरविंद के दिल की धड़कन।

सुधा की आंखों से ज़ार-ओ-क़तार आंसू बहने लगते हैं। मिनट, घंटे फिर पहर बीत जाते हैं। सुधा का रोना नहीं रुकता। अश्विन बिना हिले-डुले एक ही मुद्रा में पड़ा रहता है। पूरी रात ऐसे ही निकल जाती है। उस रात बारिश भी ख़ूब हुई थी। सुबह की पहली किरन ने सुधा को वर्तमान में ला खड़ा किया। उसने धीरे से अपना सिर उठाया। अश्विन सो रहे थे तब। पास ही रखी मेज़ से क़लम उठाकर एक काग़ज़ पर अश्विन के लिए एक नोट लिखा।

आदरणीय अश्विन जी,

आपने जो मेरे लिए किया है उसका ऋण में कभी नहीं चुका पाऊंगी। आपको अरविंद के ह्रदय ने नया जीवन दिया है और आपने मुझे अपनी बाक़ी ज़िंदगी अरविंद के बिना जीने की हिम्मत दी है।

अलविदा!

अरविंद की सुधा।

काग़ज़ के उस पुर्ज़े को अश्विन के सिरहाने रख सुधा ने अपना बैग उठाया और चल दी अश्विन के जीवन में कभी वापस न आने के लिए।

तुम्हारे लिए

अपने हाथों से मैंने कीरो की भविष्यवाणी की किताब को नीचे रख दिया और एक ज़बरदस्ती की हंसी हंस दी। हंसी का कारक था उसमें लिखा यह वाक्य, 'आप का स्वभाव बहुत स्नेह भरा है। दूसरों की भावनाओं का अत्यधिक ख़्याल रखती हैं।' हां, शायद मेरे अंदर से यह आवाज़ आई। हमेशा दूसरों की भावनाओं का ही तो ख़्याल रखा है मैंने। अपनी न तो कोई आकांक्षा थी और न ही कोई महत्वाकांक्षा। साथ ही याद आया वर्षों पहले कहा एक ज्योतिषी का कथन, "आप कभी भी दूसरों का दिल नहीं तोड़ोगी, फिर चाहे स्वयं को कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े।" आज वे सभी बातें सच हो रही थीं। तुम्हारा मेरे जीवन में आना एक संयोग मात्र था। और न सिर्फ़ आना बल्कि आ कर फिर न जाना। यह मेरे भाग्य या सौभाग्य पता नहीं क्या था? आरंभ में तो हमारे बीच के

संवाद बहुत औपचारिक थे। पर तुम्हारी वाकपटुता ने कब औपचारिकता के सारे बंधन तोड़ दिए मुझे पता भी नहीं चला। अब तुमसे बात करना मेरी दिनचर्या बन चुकी थी। शायद मैं तुम्हें समझने का असफल प्रयास कर रही थी। पर अभी तक तुम्हें मैंने अपने निकटम मित्रों की सूची में शामिल नहीं किया था। उसका एक ठोस कारण था तुम्हारा अत्यधिक विनोदी स्वभाव जो कि मेरे स्वभाव से बिलकुल उल्टा था।

तुम पांच मिनट से ज़्यादा गंभीर नहीं रह पाते थे और मैं सदा की गंभीर। तुम पर विश्वास या अविश्वास कुछ भी नहीं कर पाई थी। जब भी मेरे विश्वास तुम पर स्थिर होने लगता तभी तुम कोई गंभीर मज़ाक़ कर जाते और फिर मेरे मन विचलित हो जाता। सच पूछो तो मैंने तुम्हें कभी गंभीरता से लिया ही नहीं था। सोचा था, तुम्हारा प्रसंग समय के साथ पीछे छूट जाएगा। पर हर सोच सच हो जाए यह ज़रूरी तो नहीं। तुम मुझसे लगभग हर विषय पर बात करते थे और बातों-ही-बातों में न जाने क्या समझाना चाहते थे। पर मैं स्वयं समझना नहीं चाहती थी। मुझे तुमने पहले क़तई प्रभावित नहीं किया था। पर तुम्हारी बातों में कोई जादू ज़रूर था। जो मैं सम्मोहित हो गई। तुमने मुझे एहसास कराया कि मैं सुंदर हूं। क़सम से मुझे नहीं पता था कि मेरी आंखे वाक़ई इतनी सुंदर हैं। पर जब तुमने यह एहसास कराया तो मालूम पड़ा कि मैं ख़ुद से कितनी अनजान हूं।

जानती भी कैसे? 21 बसंत गुज़र जाने के बाद भी कभी भी किसी ने मेरे बारे में मुझसे इतनी बातें नहीं कही थीं। पर इस सब को मैं अभी भी तुम्हारा मज़ाक़ ही समझ रही थी कि अचानक उस रात तुम्हारा फ़ोन आया।

“क्या बजा है?” पहला सवाल शायद मैंने यही किया था तुमसे। तुमने बताया था कि तब रात के एक बज रहे थे। मैं गहरी नींद में थी। बिना आंखें खोले ही तुम्हारी बातें सुन रही थी। तुमने कहा कि तुम्हें मुझसे कुछ कहना है। मैंने नीद में ही जवाब दिया कि सुबह नहीं कह सकती। तुमने कहा था कि नहीं मैं बहुत सीरियस हूं। मैं तब भी इसे तुम्हारा कोई मज़ाक़ ही समझ रही थी। इसीलिए जान छुड़ाने को मैंने कहा था, “अच्छा ठीक है, कहो क्या कहना है।” मैं जानती थी तुम कितने ज़िद्दी हो और बिना अपनी बात कहे नहीं मानोगे। पर फिर जो तुमने कहा, उसे सुनकर मेरी नींद कोसों दूर भाग गई। मैं उन्नींदी लेटी थी लेकिन एक झटके से उठकर बैठ गई। दिल इतनी तेज़ धड़क रहा था मानो वह पसलियां तोड़कर बाहर आ जाएगा। मुझे अच्छी तरह से याद है वह फ़रवरी का महीना था। मैं कंबल ओढ़े थी पर मेरे शरीर थर-थर कांप रहा था। तुमने न जाने क्या-क्या कहा, पर मुझे तो सिर्फ़ इतना याद है, “मैं तुम्हें बता नहीं सकता कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूं। मैं तुम्हारी पूजा करता हूं।” और न जाने क्या क्या... और मैं सम्मोहित सी सुने जा रही थी। तुम्हारा प्रेम प्रस्ताव सुबह के तीन बजे तक चला था। तुम्हारी बातों में न जाने कौन-सा जादू था कि जिसने मुझसे न चाहते हुए कहलवा भी दिया था कि मैं भी तुमसे प्रेम करती हूं। वह न जाने कौन सा नशा था कि जिसने मेरे सोचने-समझने की शक्ति को ही समाप्त कर दिया था। दिमाग़ को जड़ कर दिया था और सारे जवाब मेरे दिल दे रहा था। उसके बाद मुझे नींद नहीं आई। तुम्हारी आवाज़ मेरे कानों में सरगोशियां कर रही थीं और

मैं सुबह होने तक बहुत ख़ुश थी, सिर्फ़ सुबह होने तक। क्योंकि सुबह होते ही वास्तविकता के हज़ारों सवाल मुंह फाड़े मुझसे जवाब मांग रहे थे— कि मैंने तुमसे दो टूक क्यों नहीं कह दिया कि मैं अभी तुम्हें अपने अच्छे मित्रों की सूची में शामिल तो कर नहीं पाई हूं फिर प्रेम कैसे कर सकती हूं? पर मैं ऐसा कह नहीं पाई। शायद, मुझमें नहीं था इतना साहस कि कह दूं सारी हक़ीक़त और तोड़ दूं तुम्हारा दिल। मेरे मन मुझे कोस रहा था कि सच क्यों नहीं कहा। मैंने सारा दिन न खाया, न पिया। बात यह नहीं थी कि मैंने स्वयं नहीं खाया, बात यह थी कि मुझसे न तो कुछ खाया ही जा रहा था और न ही कुछ पिया जा रहा था। मेरे सांस भी लेना मुश्किल हो रहा था। मैंने निश्चय किया कि अब जब तुम्हारा फ़ोन आएगा तो साफ़ कह दूंगी कि मेरे बस में नहीं है ज़बरदस्ती की चाहतों का बोझ उठाना। आज़ाद कर दो मुझे इस बोझ से। मन पर ऐसा भार कि सांस लेना भी मुश्किल।

पर जब तुम्हारा फिर फ़ोन आया तो सारे शब्द साथ छोड़ गए। तुम इतने निश्चिंत थे कि मैं सहम गई और एक बार फिर कुछ न कह सकी। तुमने बताया कि तुम्हारा एक सप्ताह में ट्रांसफ़र हो रहा है और तुम इस शहर से चले जाओगे। तब मैंने सोचा कि मैं तुम्हारे भ्रम को नहीं तोड़ूंगी, क्योंकि थोड़े दिन बाद तुम स्वयं मेरे पास से चले जाओगे। और फिर कुछ ही समय में मुझे भूल भी जाओगे। तुमने इच्छा जताई कि जाने से पहले तुम मुझसे मिलना चाहते हो और मैं यंत्रचलित-सी तुरंत हां कर बैठी। न जाने क्यों मैं तुम्हारी सारी बातें मानने लगी थी। अपने बारे में मुझे न जाने कितने भ्रम थे। उनमें से एक बड़ा भ्रम था कि मैं बहुत बेबाक हूं। किसी से शर्माती नहीं हूं। पर इस भ्रम को तुमने एक झटके में ही तोड़ डाला था। तुम्हारे पीछे कितनी स्क्रिप्ट तैयार करती कि तुम्हारे सामने यह कहूंगी, वह कहूंगी, पर जब तुम सामने होते तो कुछ न कह पाती। मेरे सारे शब्द 'हां' और 'हूं' में ही सिमटकर रह जाते। पर जब मैं तुम्हारी दी हुई उपमाएं सुनती तो चेहरे पर केसर-सी लाली दौड़ जाती। पर तुमसे नज़र मिलाकर बात करने की हिम्मत तक न पड़ती। पलकें उठाएं न उठती। तुम कहते कि मैं बोलती बहुत कम हूं और मैं सिर्फ़ हंस के रह जाती। मैं ऐसा मानती थी कि जब आप कोई जवाब न दे पाएं तो सिर्फ़ हंस दे और जवाब छोड़ दें सामने वाले की आस्था और समझ पर। जो चाहे वह अर्थ लगा ले।

वास्तविकता यह थी कि मैं कम इसलिए बोलती थी कि मेरे मुंह से कहीं सच न निकल जाए। जिसे तुम बर्दाश्त नहीं कर पाओगे। मुझे ऐसा लगने लगा था कि जैसे मैंने तुम्हारे दिल का ठेका ले रखा है। कहीं वह टूट न जाए, कहीं उसे ठेस न लग जाए, मैं एकांत में बैठकर अपने संवाद व्यवस्थित करती रहती कि तुमसे क्या कहना है और क्या नहीं। कभी कभी मुझे स्वयं पर हैरानी होती कि मैं क्या थी और अब क्या हो गई हूं? हां, इतना ज़रूर था कि जब-जब तुम्हारे प्रेम की वर्षा होती तो मैं आंखें मूंदे अंदर तक भीगती चली जाती। एक अनोखा एहसास था जो थोड़े समय के लिए ही सही, पर मुझे ख़ुश ज़रूर कर जाता था। मैं मंद-मंद मुस्कुराया करती और घंटों अपने आप को शीशे में देखकर तुम्हारी कही बातों की सत्यता परखती। फिर ख़ुद ही हंस पड़ती अपने पागलपन

पर। तुमने कहा कि तुम मुझसे मिलना चाहते हो और वह भी अपने घर पर। मैंने भी तुरंत हां कह दी। मेरी सहेलियों ने कितना मना किया था तुम्हारे घर जाने के लिए। पर न जाने क्यों मैं बहुत निश्चिंत थी। मानो तुमसे कोई डर ही न हो। यह एक विश्वास था जो अनजाने में ही तुम पर बन गया था। मैं निडर हो तुम्हारे घर पर तुम्हारे पास घंटों बैठी रही, तुम्हारे प्रेम में डूबी बातें सुनती और बीच-बीच में लजा भी जाती। पर यह सब तो मैं तुम्हारी ख़ुशी के लिए ही तो कर रही थी, क्योंकि तुम्हें दो-चार दिन में तो चले ही जाना था। अगर मैंने अब सच कह दिया तो तुम्हें बहुत दुख होगा। इससे बेहतर यह होगा कि तुम इस भ्रम को दिल में संजोए अपने साथ ले जाओ कि एक सुंदर-सी लड़की तुमसे प्रेम करती है। पर इस सब के बावजूद मैंने तो तुमसे इतना तो कह ही दिया था कि मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकती। मुझसे किसी भी तरह की उम्मीद मत करना। तब तुमने कितने निश्चिंत भाव से कहा था कि इतनी अनमोल चीज़ जब मेरे पास हैं मुझे और क्या चाहिए? तुम मेरी हो तो और मुझे क्या चाहिए जीवन में? मैं एक बार फिर हंस दी थी। मेरे पास कोई जवाब नहीं था देने को। तुम जब इतनी चाहते लुटाते तो मुझे लगता कि मैं कितनी सख़्त दिल हूं। आजकल कहां मिलता है इतना चाहने वाला। पर मेरी अपनी मजबूरियां थी।

हमारे बीच धर्म की ऊंची दीवारें खड़ी थीं। जिन्हें लांघने का साहस मुझमें तो क़तई नहीं था। तुम्हारी बातों में कोई जादू था कि मैंने कई बार स्वयं को पिघलते-पिघलते संभाला था। मुझे लगने लगा था कि अगर और समय बीता तो कहीं मैं अपने उसूल न तोड़ बैठूं और तुमसे प्रेम करने लगूं। आख़िर मैं भी तो एक इंसान हूं। वह भी नारी, जिसका तो निर्माण ही ईश्वर ने स्नेह से किया है। कि उसे ज़रा-सी प्रेम की तपिश मिली नहीं की वह पिघली नहीं। यही सब सोच मैंने अपने मन की बात एक पेपर पर लिख ली थी। जो मैं तुमसे सामने नहीं कह पाई उसे चिट्ठी में लिखकर देने का फ़ैसला किया। और चल दी तुम्हें देने। साथ ही निश्चय कर चुकी थी कि आज तो सारे भ्रम समाप्त कर दूंगी।

क्या करूं? इतनी चाहतों का बोझ उठाया नहीं जाता। लगता है धोखा दे रही हूं तुमको भी... और स्वयं को भी...

अचानक तुम्हें सामने देखकर मेरी तंद्रा टूटी। तुम्हारा मुस्कुराता चेहरा देखकर मेरे साहस वहीं पर ढेर हो गया। पर किसी तरह ख़ुद को संभाला। “मैं तुम्हें कुछ देना चाहती हूं।” जवाब में तुमने कहा, “मैं भी तुम्हें कुछ देना चाहता हूं।” और इससे पूर्व मैं कुछ समझ पाती, तुमने झुक कर मेरे पैरों पर अपने अधरों से हस्ताक्षर कर दिए। इसके बाद तो मैं पिघलती चली गई। उस समय मेरे हाथ पर्स से चिट्ठी निकालने का उपक्रम कर रहा था। वह यथावत रुक गया और मैंने चिट्ठी वहीं अंदर रख दिया। एक ही क्षण में सारे समीकरण बदल गए थे। सारे निश्चय अर्थहीन मालुम पड़ रहे थे। तुमने कभी कहा था कि मैं तुम्हारे लिए देवी के समान हूं। मैं हार चुकी थी पूरी तरह। तुमने स्वयं समर्पित होकर मुझे समर्पण के लिए बाध्य कर दिया था। मुझे लगता है कि इतनी तपस्या करने पर तो ईश्वर भी राज़ी हो जाते हैं मैं तो फिर भी इंसान हूं। मुझे सामने वाले की तपस्या का प्रतिदान अवश्य देना चाहिए। यही सोच मैंने अपने होंठ तुम्हारे मस्तक पर रख मौन

स्वीकृत दे ही डाली थी।

प्यासा

आज मेरा मन उड़ा जा रहा था। नई आशा से, नई उमंग से। अपने इंतज़ार को पाने की ख़ुशी में। जोश से भरा हुआ मन, जैसे सीमा पर जंग जीतकर आया हो। मैं अभी अपने ख़्यालों में घूम ही रहा था कि एक नवयुवती सहसा बराबर वाली सीट पर आकर बैठ गई। वह बहुत सुंदर थी, लेकिन तान्या से ज़्यादा नहीं। तान्या वह नाम जिसे लेते ही मेरे मन फूल की तरह खिल उठता है। खिलना भी चाहिए। आख़िर बहुत जतन कर मैंने उसे इस क़ाबिल बनाया था। वह क्या थी? स्कूल में पढ़ने वाली एक सीधी-सादी लड़की। मैंने उसे जीना सिखाया, जीवन का मतलब बताया।

मुझे अच्छी तरह याद है जब उसके बाबू जी का देहांत हुआ था, तब वह रो-रोकर आधी हो गई थी। मैंने उसे ढाढस बंधाई थी और उसकी मां से कहा था, “आप तान्या की

बिलकुल चिंता मत कीजिएगा। और हां, उसकी पढ़ाई भी बंद मत कीजिएगा। पैसे वग़ैरह की चिंता सब मुझ पर छोड़ दीजिए।" इतना कह मैं भारी मन से चला आया था और आकर तुरंत मनीआर्डर किया था। तब से आज तक उसे किसी भी चीज़ की कमी नहीं होने दी थी। आज वह दर्शनशास्त्र में एमए है। यह मेरी मेहनत का ही तो फल है। वरना वह भी और लड़कियों की तरह कहीं ब्याह दी जाती। जबकि, आज वह लगातार उन्नति के पथ पर अग्रसर है। जब भी मैं सरहद से वापस आता तो फ़ौरन उसके शहर की राह पकड़ लेता। पता नहीं क्या आकर्षण था उस शहर में? जब जाता तो अपने साथ ढेर सारी किताबें ले जाता। वह किताबें, जिनके लिए पढ़ने के शौक़ीन लाइब्रेरियों की ख़ाक छानते फिरते हैं। वह जैसे ही मुझे देखती तो जोर से चिल्लाती, "मां.. मां.. कमल बाबू आए हैं.. कमल बाबू।" और बस मुझे लेकर बैठ जाती। कमल बाबू मैंने इसमें फर्स्ट प्राइज जीता है, उसमें टॉप किया है। वह कभी मुझे अपने सहेलियों के क़िस्से सुनाती.. अपनी कॉपियों पर टीचर के मिले रिमार्क दिखाती। और मैं उसकी भोली-भाली बातें सुनता रहता। कितना निष्पाप, सरल ह्रदय है तान्या का! कितनी मासूम है वह!

पिछले साल की ही तो बात है। जब मैं उसके पास गया था। घर का दरवाज़ा खुला हुआ था। मैं अंदर चला गया था। सामने एक नारी काया तार पर कपड़े सुखा रही थी। मुझे पहचानते देर नहीं लगी। अरे, यह तो तान्या है। कितनी बड़ी हो गई है। क़द भी ख़ूब निकल आया है। लगभग मेरे कंधे जितना। मैं एकटक उसे निहार रहा था। वह कुछ गुनगुना रही थी। सहसा वह अपनी धुन में मुड़ी और उसकी नज़र मुझसे टकराई। पर वह इस बार हमेशा की तरह चिल्लाई नहीं, "मां..मां..कमल बाबू आए हैं..कमल बाबू..." पता नहीं वह नज़रें झुकाए क्या ढूढ़नें लगी। अगले ही क्षण उसने तार पर से अपनी गीली चुन्नी खींची और ओढ़कर अंदर भाग गई। उस एक क्षण में अचानक से कुछ घट गया था। मैं कुछ समझ न पाया। पर जब समझ ने काम किया तो एक अनजानी सी ख़ुशी अंदर तक तिरती चली गई। तभी से... हां शायद तभी से... मेरे मन में प्रेमांकुर फूटा था। और जब तक मैं वहां रहा, पता नहीं क्यों वह मुझसे कटी-कटी-सी रही। उसने इस बार न तो मुझे अपनी उपलब्धियां सुनाई और न ही सहेलियों से हुए झगड़े। एक दिन मैंने उसकी मां से कहा, "अब तान्या बड़ी हो गई है। कोई लड़का-वड़का देखा कि नहीं?" इससे पूर्व कि उसकी मां कोई जवाब देती, तान्या ने बड़े कड़े स्वर में कहा, "मां कह दें कमल बाबू से, कोई आवश्यकता नहीं है मेरे लिए लड़का-वड़का देखने की।" लेकिन, उसका कड़ा स्वर भी उस समय मुझे अमृत समान मीठा लगा। और मैं बहुत ख़ुश होकर चला आया था। ऐसा लगा मानो तान्या ने मेरे मन की बात कह दी हो। आख़िर आज वह आज दर्शनशास्त्र में एमए है तो किसकी वजह से? मेरी वजह से... लेकिन मैंने उस पर कोई एहसान नहीं किया है। मैं तो एक मूर्तिकार हूं। जो बड़ी लगन से मूर्ति को तराशता है। यह तो उसकी तपस्या है, उसकी पूजा है। तो फिर इस पर एहसान कैसा? जैसे-जैसे मेरा गंतव्य क़रीब आ रहा था, मेरे मन में हलचल सी मचने लगी थी। "का बाबू साहेब का गाड़ी मा ही सोवै का बिचार है!" किसी की आवाज़ ने मेरी तंद्रा तोड़ी। मैंने चौंककर देखा, वह एक बूढ़ा

कुली था और वह मुझे हिलाकर आगे जा चुका था। मैंने नज़र दौड़ाई तो पूरा डिब्बा ख़ाली हो चुका था। मैंने बैग उठाया और स्टेशन पर उतर गया। बाहर निकला, रिक्शा किया और पहुंच गया तान्या के घर। तब तक शाम हो चुकी थी। तान्या और उसकी मां ने बहुत आवभगत की। खाने आदि से फ्री होकर मैं छत पर आराम करने आ गया था। लेकिन रह-रहकर एक ही बात मुझे चुभ रही थी कि तान्या इतनी उदास क्यों है? मुझसे खुली तो वह पहले भी नहीं थी, पर हमेशा उसका चेहरा फूल की तरह खिला रहता था। आज मुझे एहसास हो रहा था कि मैं अनजाने में ही तान्या से कितना जुड़ गया था। उदास तो वह थी, लेकिन इसका एहसास रह-रहकर मुझे कचोट रहा था। मैं अभी यह सोच ही रहा था कि मेरी तपस्या की देवी अपना मुरझाया हुआ चेहरा लेकर ऊपर आ गई। उसके हाथ में पानी की बोतल थी। जिसे उसने तिपाई पर रखा और ख़ामोशी से जाने लगी। अब मैं स्वयं को रोक न सका और उसे ठहरने को कह दिया। वह रुक गई। मैंने उससे पूछा, “तान्या क्या बात है? तुम इतनी उदास क्यों हो? कोई बात हो तो मुझे बताओ। मैं तुम्हारी मदद करूंगा।”

वह कुछ न बोली तो मैंने ज़िद की, “अपने कमल बाबू को भी नहीं बताओगी! बोलो... बोलो न...” मेरे इतना ज़ोर डालने पर उसने कहना शुरू किया, “कमल बाबू, आप को पता है मां ने आपको क्यों बुलाया है?” मैंने ना में सिर हिलाया। “इस बार मां ने आपको मेरी शादी के विषय में बुलाया है। मां आपसे मेरा विवाह कराना चाहती हैं। पर मैं...”

“पर क्या?” मेरे दिल उछलकर हलक़ में आ गया। कई अंजानी आशंकाओं ने मुझे घेर लिया। “व..व.. वह.. मैं किसी और से... मैं उसके बिना जी नहीं सकती।” इतना कह तान्या मेरे सामने फूट-फूटकर रोने लगी। मेरे आंखों के सामने अंधेरा छाने लगा। मैंने ख़ुद को बड़ी मुश्किल से संभाला और तान्या को चुप कराया। तान्या तो मेरे सामने रो सकती थी। पर मैं कहां जाकर रोऊं? मेरी तो दुनिया ही लुट गई थी और मैं एक मूक-दर्शक की भांति खड़ा-खड़ा सब देख रहा था। वह तो मेरी तपस्या थी। कहां कमी रह गई मेरी तपस्या में। मैंने तो उसे चाहा था, पूजा था... आज वह किसी और की हो चुकी है। वह जाने लगी। पर रुककर बोली, “कमल बाबू, कल मां इस विषय में आपसे बात करेंगी। मैं क्षमा चाहती हूं। इस जन्म में तो मैं आप की जीवन संगिनी नहीं बन सकती।” वह इतना कर चली गई और मैं सारी रात सो न सका। एक दिल कहता कि दे दो उसे उसका प्यार। तो दूसरा दिल समझाता कि तू तो उसे तब से चाहता है जब वह कुछ भी नहीं थी। उसे आज इस क़ाबिल मैंने ही तो बनाया है। एक दिल कहता कि वह तो सहानुभूति थी तो दूसरा कहता कि नहीं, वह प्रेम था। और इसी ऊहापोह में रात कट गई। सुबह जब तान्या की मां ने शादी की बात चलाई तो मैंने बड़ी कुशलता से मना कर दिया।

“क्या बात कर रही हैं मां जी! तान्या का विवाह मुझसे... मैं तो ऐसा सोच भी नहीं सकता। मैंने उसे पढ़ाया...लिखाया.. तो क्या इसलिए कि उससे विवाह कर लूं! आप ही बताएं कि मेरी ज़िंदगी का कोई भरोसा है भला! पता नहीं दुश्मन की कौन-सी गोली मौत

का सामान बन जाए। मैं तो इस बार मन बनाकर आया था कि तान्या का कहीं रिश्ता देखकर आऊंगा।"

"बेटा, तुम नहीं करोगे तो कौन करेगा शादी इस बिन बाप की बेटी से?" तान्या की मां का चेहरा उतर गया। "आप चिंता न करें। मैंने एक लड़का देख रखा है। आप कहें तो बात चलाऊं?"

फिर मैंने जल्दी से शादी की तैयारियां शुरू कर दी। वह लड़का जिसे तान्या पसंद करती थी, उसका नाम अभिनव शर्मा था। वह एक संभ्रांत परिवार का लड़का था और तान्या के कॉलेज में ही पढ़ता था। मैंने उसके परिवारवालों से बात कर ली थी। सब राज़ी-ख़ुशी से तैयार हो गए थे। धीरे-धीरे शादी का दिन भी क़रीब आ गया। तान्या बहुत ख़ुश थी। विदाई का वक़्त हो चला था कि तभी मेरे लिए सरहद से टेलीग्राम आ गया। सीमा पर दुश्मनों ने हमला कर दिया है, तुरंत पहुंचें। मैं हाथ में टेलीग्राम लिए ही तान्या को बिदा करने जा पहुंचा। तान्या मेरे सामने फूट-फूटकर रो दी। मैं भी ख़ुद को नियंत्रित नहीं कर पाया और तान्या के सामने ही फूट-फूटकर रोने लगा। हम दोनों ही बिछड़ने के ग़म में आंसू बहा रहे थे। बस, फ़र्क़ इतना था कि वह सबसे बिछड़ने के ग़म में आंसू बहा रही थी और मैं सिर्फ़ उससे बिछड़ने के ग़म में आंसू बहा रहा था। आंसुओं से भीगा चेहरा लिए वह मुझसे पूछ रही थी कि अब मैं वापस आऊंगा कि नहीं। मैंने न चाहते हुए भी हां में सिर हिला दिया, क्योंकि मैं उसका दिल नहीं तोड़ना चाहता था। वह बड़ी निश्चिंत-सी विदा हो चुकी थी। मैं भी तैयार था सीमा पर जाने के लिए। मैंने एक बार... या यूं कहें कि आख़री बार तान्या न सही, उसके वीरान घर को देखा और चला आया देश पर मर मिटने को।

आख़री साइन

आज एक बार फिर मैं उस दरवाज़े पर खड़ी थी, जिसे मैंने अभी दो साल पहले ही अलविदा कहा था। मगर भाग्य का क्या करती? जब मैं यहां से गयी थी तो मन में यह सोच कर गयी थी कि फिर कभी दुबारा इस दरो-दिवार, इस विशाल गेट को नहीं देखूंगी। मगर न चाहते हुए भी संयोगवश मेरी फिर से पोस्टिंग इसी डिग्री कॉलेज में हो गयी थी। जब मुझे यहां का ज्वाइनिंग लेटर मिला तो मन कुछ भारी-सा हो गया। आख़िर, क्या कुछ नहीं किया था कि किसी तरह से पोस्टिंग रुक जाए। पर यहां वापस आना शायद मेरी नियति में था।

कॉलेज के गेट पर खड़ी-खड़ी मैं यह सोच ही रही थी कि किसी गाड़ी के तेज़ हॉर्न ने मेरी विचार शृंखला को तोड़ दिया। बाइक सवार एक नवयुवक, जिसके पीछे एक लड़की

बैठी हुई थी, ने खीझते हुए कहा, “हटिए मैडम, क्या दिन में ही सपने देख रही हैं!” इससे पहले कि मैं कुछ कहती कि बाइक सवार युवक के साथ बैठी लड़की, जो फूहड़ से कपड़ों में ख़ुद को कुछ ज़्यादा ही स्मार्ट समझ रही थी, अपने बालों में हाथ फिराते हुए स्टाइल से बोली, “अगर आपको सपने ही देखने हैं तो थोड़ा साइड होकर देखें।”

अब तक मैं थोड़ी सामान्य हो चुकी थी। मैंने सड़क के किनारे होते हुए कहा, “सॉरी आई मेड अ बिग ट्रबल फॉर यू।” शायद उस पश्चिमी सभ्यता में ढली लड़की को मेरे इस तरह धारा प्रवाह अंग्रेज़ी में बातचीत की आशा न थी। इसीलिए वह थोड़ी शर्मिंदा-सी हो गयी। मैं उस बाइक सवार युवक और पीछे बैठी लड़की के बारे में सोच रही थी कि वह लड़के से किस तरह लिपटी जा रही थी? मन में ख़्याल आया कि पता नहीं भावी पीढ़ी किस ओर जा रही है?

मैं काफ़ी थक चुकी थी। सोचा, कॉलेज के बजाय आवास पर चलकर आराम किया जाए। मैंने घंटी बजाई तो नौकर ने दरवाज़ा खोला। उसे मेरे आने की पहले से ही सूचना मिल चुकी थी। कैंपस में बने इस तीन कमरों के कॉटेजनुमा घर को बड़े ही व्यवस्थित तरीक़े से बनाया गया था। मैं अभी नहाकर आई ही थी कि नौकर चाय बना लाया। उस दिन मैंने कुछ काम नहीं किया। मैं काफ़ी थकी हुई थी। लिहाज़ा, सुबह देर तक सोती रही। और जब उठी तो मन थोड़ा हल्का हो चुका था। दिन काफ़ी सुहावना था। मैंने जल्दी-जल्दी नाश्ता किया और तैयार होने अपने कमरे में आ गयी। मैंने हल्के गुलाबी रंग की साड़ी पहनी जो मुझे बेहद पसंद थी। साथ ही मैच करती हुई शॉल भी कंधे पर डाली। नाज़ुक-सी ज्वेलरी पहनी और बालों को सुंदर से जूड़े का आकार दिया। फिर एक गुलाबी रंग की गुलाब की कली आहिस्ता से अपने बालों में सेट कर ली। माथे पर बिंदी और परफ़्यूम लगाकर अपने-आपको जो दर्पण में निहारा तो स्वयं ही शर्मा गयी। सहसा, किसी के शब्द याद आ गए, “वसु, तुम्हारा यह गुलाबी.... गुलाबी रूप मेरे होश उड़ा देता है।” साथ ही किसी का भावपूर्ण चेहरा आंखों के सामने घूमने लगा और स्वतः ही आंखें नम हो गयीं।

उस घटना को बीते अभी दो वर्ष ही तो हुए थे। मैं दो वर्ष पूर्व इस कॉलेज में अर्थशास्त्र की प्रवक्ता बनकर आई थी। पहले दिन ही जब मैं कॉलेज के गेट में घुसी तब सहसा ही उनसे टकरा गयी थी। मैं तो गिरते-गिरते बची थी। हाई हील जो पहन रखी थी। मगर उन्होंने मुझे थाम लिया। और यह वही पल था जब वे मेरे ह्रदय में अपनी जगह बना गए थे। सब कुछ एक पल में ही घटित हो गया था। इस टक्कर में ग़लती मेरी थी। पर वह इतने सभ्य थे कि इससे पहले कि मैं कुछ कहती, वह ही बोल पड़े, “माफ़ कीजियेगा। मेरी वजह से आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा। आपको कहीं चोट तो नहीं आई?” इससे पहले की मैं कुछ कहती वे चले गए। मैं तो जैसे उनकी भावपूर्ण आंखों से सम्मोहित सी हो गयी थी।

नौकरी का पहला दिन और पहले ही दिन अपूर्व से टकराना एक संयोग था, जिसे आगे चलकर प्यार में परिवर्तित होना था। मेरे लिए यह शहर बिलकुल अनजान था। जब

मुझे पता चला कि मेरी जॉब बनारस में लगी है, मैं बहुत ख़ुश हो गई थी। मैं हमेशा से इस शहर को क़रीब से देखना चाहती थी, महसूस करना चाहती थी। कहते हैं बनारस दुनिया के सबसे प्राचीनतम जीवित शहरों में से एक है और आज भी अपने प्राचीन गौरव को संजोये हुए है। यहां मोक्ष की तलाश में लोग दूर-दूर से आते हैं और यहीं के होकर रह जाते हैं। मुझे और अपूर्व को पास लाने का श्रेय भी इस नगरी को ही जाता है। मुझे भारतीय दर्शन में रुचि थी और अपूर्व को घूमने का शौक़। उन्हें भी बनारस का रहस्य आकर्षित करता था और मुझे भी। मुझे जब मौक़ा लगता गंगा आरती देखने शाम को गंगा के घाटों पर चली जाती। हर-हर गंगे की गूंज सारे दिन की थकान मिटा देती। प्राणदायनी मां गंगा के निर्मल जल को बहता देखना मुझे बहुत अच्छा लगता। आरती के समय लाइन से खड़े होकर बारह ब्राह्मण बड़े से दीपदान हाथों में लिए गंगा की आरती करते। आस-पास फेरी वाले बड़े से पत्ते में फूलों के बीच दीपक रखकर बेच रहे होते। मैं उनसे दीपक खरीद गंगा में प्रवाहित करती और दूर तक बहते इन दीपकों को पानी पर तैरते देखती। मुझे कभी एहसास ही नहीं हुआ कि मुझे ऐसा करते हुए कोई दूर से चोरी-चोरी देख रहा होता है। एक दिन उस चोर की चोरी पकड़ी गई। वह दूर गंगा घाट की सीढ़ियों पर बैठकर देखने वाला कोई और नहीं अपूर्व ही थे। मैंने उनकी चोरी पकड़ ली है यह जान शर्मिंदा हुए जा रहे थे बेचारे। पहली बार हमारी बात वहीं हुई थी। फिर तो जैसे बातों का सिलसिला चल निकला। हम आए दिन साथ घूमने जाते। बनारस की तंग गलियों में घूमते हुए अपूर्व हमेशा मुझे प्रोटेक्ट करते। मुझे अच्छा लगता।

समय के साथ-साथ हमारी पहचान बढ़ती गयी। उनका पूरा नाम अपूर्व प्रसाद था। वह मनोविज्ञान के प्रवक्ता थे। अपूर्व एक डाईहार्ट रोमांटिक इंसान थे। गंभीर से दिखने वाले अपूर्व को देखकर कोई अंदाज़ा भी नहीं लगा सकता था कि वह इतने रोमांटिक होंगे। मैं भी कहां अंदाज़ा लगा पाई थी! वह हमेशा कुछ ऐसा करते कि मैं अचंभित हो जाती। उनको सरप्राइज़ देना बहुत पसंद था। इसीलिए प्रपोज़ करने के लिए उन्होंने कुछ ख़ास प्लान किया था। एक दिन शाम को जब लाइब्रेरी से मैं निकल रही थी तो अपूर्व सामने से आते दिखाई दिए। दिल में अजीब-सी ख़ुशी हुई। हमारे डिपार्टमेंट अलग-अलग थे और हम यूनिवर्सिटी में कम-से-कम बात किया करते थे। जब वह क़रीब आए तो सिर्फ़ इतना बोले, “शाम को सात बजे अस्सी घाट पर मिलना, एक ज़रूरी बात करनी है।” और लंबे-लंबे क़दम बढ़ाकर लाइब्रेरी में घुस गए बिना मेरे जवाब जाने। अजीब आदमी है! मैंने सोचा। आप जिसे प्यार करने लगते हैं उसका आप पर बस चलाना भी अच्छा लगता है। मैं मुस्कुरा कर आगे बढ़ गई। जल्दी-जल्दी घर पहुंची। घड़ी में टाइम देखा छह बज रहे थे। टाइम कम है। अभी तो तैयार भी होना है। मैंने जल्दी से अलमारी से पिंक कलर की साड़ी निकाली, साथ ही मैचिंग का पर्ल नेकलेस गले में डाला। बालों को क़रीने से जूड़े का रूप दिया और एक गुलाब की कली जूड़े में सेट की। मौसम थोड़ा ठंडा था तो शॉल भी ले ली और भागते भागते ऑटो तक पहुंची। भैया अस्सी घाट चलोगे?

“मैडम जी, सौ रूपया लगेंगे” ऑटो वाला बोला।

“हां..हां ठीक है, ले लेना सौ रूपया। अब चलो जल्दी से।” मैं बार-बार टाइम देख रही थी। अस्सी घाट बनारस में बने गंगा के घाटों में सबसे दूर जाकर पड़ता है। आम तौर पर वहां लोगों की भीड़ कम ही होती है। मैंने जल्दी-जल्दी ऑटो वाले को पैसे चुकाए और घाट की ओर बढ़ गई। अपूर्व सामने ही खड़े मेरे इंतज़ार कर रहे थे। मैंने पास जाते ही अधीर हो पूछा, “यहां क्यों बुलाया है?”

“बताता हूं। चलो मेरे साथ।” अपूर्व घाटों की सीढ़ियां उतरने लगे। नीचे एक बड़ी-सी नाव हमारा इंतज़ार कर रही थी। अपूर्व ने मुझे सहारा देकर सावधानी से नाव में बिठाया।

अच्छा तो ये बात है। मैंने सोचा। साहब ने नौका विहार का मन बनाया है। शाम ढल रही थी और सुरमई अंधेरा छाने लगा था। ठंडी-ठंडी हवाएं मेरे बालों को सहला रही थीं। आसमान में पूरा चांद निकला हुआ था। अच्छा तो आज शरद पूर्णिमा है, इसीलिए आसमान पर चंद्रमा कुछ आधिक ही बड़ा और चमकीला जान पड़ता है। पानी की लहरों पर बिछी चांदनी अंधेरे को रौशन कर रही है। ऐसे में अपूर्व का साथ बहुत सुहाना लग रहा था। ज़िंदगी में कभी प्यार के इतने मीठे पल आते हैं कि दिल कहता है कि वक़्त यहीं थम जाए, ठहर जाए, जब खामोशियां ही बोलने लग जाएं तो किसी के कुछ भी कहने की ज़रूरत ही कहां बचती है।

गंगा की अविरल बहती धारा के बीच मेरे हाथ थाम कर अपूर्व बोले, “मैं अपनी पूरी ज़िंदगी तुम्हारे साथ ऐसे ही बिताना चाहता हूं। मुझसे शादी करोगी?”

मैं भला क्यों मना करती! मैं तो ख़ुश थी कि अपूर्व जैसा जीवनसाथी जो मिल रहा है। मैंने बिना एक पल गंवाए उनके परिणय प्रस्ताव को मान लिया।

हम दोनों कब प्यार के बंधन में बंध गए थे, यह हमें पता ही नहीं चला। मुझे उनकी भाव पूर्ण आंखें बहुत पसंद थीं और उन्हें मेरे ख़ुशबू में डूबा यह गुलाबी रूप बहुत भाता था।

वह सादगी से विवाह करना चाहते थे मुझे भी शादियों में होने वाले लंबे-चौड़े तामझाम पसंद न थे। मेरे भी इस दुनिया में दूर की मौसी के सिवा कोई न था। मैंने उन्हें निमंत्रण दे दिया था। मगर उस वक़्त उनके बच्चों की परीक्षा चल रही थी। इसलिए, उन्होंने शादी में न आ पाने के लिए क्षमा मांग ली थी। हम लोगो ने गांव जाकर शादी करने का फ़ैसला किया था। गांव में अपूर्व के माता-पिता रहते थे। अपूर्व एक दिन पहले जाकर सारी तैयारी कर आए थे। आज हमें गांव जाना था। मैं तैयार हुई ही थी कि अपूर्व आ गए। वह आज बहुत ख़ुश नज़र आ रहे थे। पर मुझ पर अजीब-सी घबराहट सवार थी। पता नहीं क्यों मन बेचैन हो रहा था! मैंने चाहकर भी अपूर्व को यह नहीं बताया। दरअसल, मैं उनका मूड ख़राब नहीं करना चाह रही थी। अपूर्व गाड़ी कुछ तेज़ चला रहे थे। मैंने कई बार टोका भी। पर वह आज कुछ ज़्यादा ही ख़ुश थे। तभी अचानक गाड़ी सामने से आते ट्रक से जा टकराई। उन्होंने बचाने की बहुत कोशिश की थी। पर टक्कर हो ही गयी। अपूर्व के सर से ख़ून बहे चला जा रहा था। मुझे अपना होश न था। मैं वहशियों की तरह चिल्लाये जा रही थी। मगर आस-पास कोई मेरी मदद के लिए न था। मैं भागकर मदद के

लिए जाना चाहती थी। मगर अपूर्व ने रोक लिया था और कहने लगे, “वसु मैं अब नहीं बचूंगा... नहीं बचूंगा... तुम शादी कर लेना। मेरी वजह से तुम अविवाहित मत रहना। वचन दो कि तुम अपना सुंदर रूप कभी नहीं बदलोगी। वचन दो... वचन दो प्लीज.. प्लीज वसु...” अपूर्व की आवाज़ कांप रही थी। वह मेरी तरफ़ हाथ बढ़ाये मुझसे वचन मांग रहे थे। मैंने उनके हाथ पर अपना हाथ रख दिया और दृढ़ निश्चय के साथ मैंने अपूर्व के हाथ से उनके ही बहते रक्त को अपनी मांग में सजा लिया था। इसके बाद उनसे कहा था, “अपूर्व, आप मुझसे वचन मांग रहे थे कि मैं शादी कर लूं, तो लो, मैंने शादी कर ली। अब मैं दूसरा वचन अपनी आख़री सांस तक निभाऊंगी। वह कुछ बोलना चाहते थे। मगर चुप हो गए। जानते थे कि मैं कितनी ज़िद्दी स्वभाव की लड़की हूं। मैंने महसूस किया कि उनके चेहरे पर अपार शांति थी। लेकिन, वह मुझसे दूर... बहुत दूर चले गए। और मैं असहाय उन्हें ऐसे जाता देख रही थी। कुछ कर भी न सकी थी। मेरी खुशियां पल भर में ग़म में बदल गई थीं। मेरा घर बसने से पहले ही उजड़ गया था। जब अपूर्व मेरी ज़िंदगी में आए थे तो लगा था कि बरसों की अकेली भटकती ज़िंदगी को अब किनारा मिल गया है। इतना प्यार करने वाला साथी... मैं बहुत ख़ुश थी। मुझे क्या पता था कि यह साथ सिर्फ़ थोड़े समय का ही है? अपूर्व के साथ जिए वह चार साल चार जन्मों के बराबर थे। उनके साथ चलती थी तो लगता था कि मैं पूर्ण हो गई हूं।

“बीबी जी, का सोच रही हैं? का कालिज नाही जाएंगी!” धनीराम की आवाज़ ने मुझे वर्तमान में ला पटका। मैंने जल्दी से आंसू साफ़ किए कि कहीं धनीराम न देख ले। फिर स्लीपर पहनकर घर से निकल गयी। जल्दी-जल्दी कॉलेज पहुंची। कॉलेज के प्रांगण में लड़के-लड़कियां पहले की तरह ही इधर-उधर घूम रहे थे। सब कुछ वैसा ही था, जैसा मैं छोड़ कर गयी थी। वही कोलोनियल आर्किटेक्चर में बनी कॉलेज की बिल्डिंग, वही ऊंचा गेट, मेन गेट से मुख्य बिल्डिंग तक दोनों ओर लगे अशोक और अमलतास के पेड़ अमलतास के पेड़ों पर भर-भर के आते पीले फूल। सब कुछ वैसा का वैसा। कुछ भी नहीं बदला था। बदली थी तो बस मैं। पहले मैं प्रिंसिपल के रूम में गयी। वहां मुझे कुछ ज़रूरी पेपर्स पर साइन करने थे। फिर अपने डिपार्टमेंट की तरफ़ आ गयी। मुझे कॉलेज में इस बार दोहरी ज़िम्मेदारी दी गई थी। प्रिसंपल ने मेरी मेहनत और लगन को देखते हुए इस बार मुझे अकेडमिक क्वार्डिनेटर की भी ज़िम्मेदारी दे दी थी। सामने ही मेरे रूम था, जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था ‘डॉ. वसुंधरा भटनागर, अकादमिक क्वार्डिनेटर’। पढ़कर एक अनजानी-सी ख़ुशी मिली कि मैंने कितने कम समय में कितनी दूरी तय कर ली है... और क्यों न करती? अपूर्व से जुदा होने के बाद उसके कहे वाक्य मुझे प्रेरणा जो देते थे।

अपूर्व के चले जाने के बाद कुछ भी तो नहीं बचा था जीवन में। रो-रोकर आधी हो गई थी। मौसी को जब ख़बर मिली कि अपूर्व का एक्सीडेंट हो गया है तो वह सब कुछ छोड़-छाड़कर भागी चली आई थीं। पूरे दो महीने रही थीं मौसी मेरे पास। मेरे दुःख को वह कम तो नहीं कर सकती थीं, पर मुझे दिलासा ज़रूर देतीं। मैं तो बिलकुल ही टूट चुकी थी। लगता था जैसे शरीर में जान ही नहीं है। पर मौसी ने हिम्मत दिलाई। अपूर्व के माता-

पिता बहुत बूढ़े थे। एक अपूर्व ही थे जो उनका ख़्याल रखते थे। अपूर्व के चले जाने के बाद तो वह बिलकुल बेसहारा हो गए। आज अपूर्व नहीं थे, उनकी ज़िम्मेदारी उठाने के लिए पर मैं तो थी। मैंने हिम्मत जुटाई और फिर से ख़ुद को खड़ा किया। पर बनारस में रहना मुश्किल हो गया था। यहां की हर गली हर सड़क मैंने अपूर्व के साथ देखी थी। अब उनके बिना यहां सांस लेना भी मुश्किल था। अपूर्व की यादें मुझे जीने नहीं दे रही थीं। मौसी मेरा हाल जानती थीं। इसीलिए उन्होंने मुझे सलाह दी, "वसु, तू अपना ट्रांसफ़र कहीं और करवा ले, यहां रहेगी तो रो-रो कर पागल हो जाएगी।"

कितनी मुश्किलों से मेरे ट्रांसफ़र हुआ था। जब यहां से गई थी तो सोचकर गई थी कि यहां कभी दुबारा वापस नहीं आऊंगी। पर आज किस्मत एक बार मुझे वापस इसी शहर में ले आई थी। न यह शहर बदला था और कॉलेज। बदल तो बस मैं गई थी। ज़िंदगी ने मुझ पर इतने ज़ुल्म किये थे कि मैं हंसना ही भूल गई थी। उस मुश्किल घड़ी में अपूर्व के शब्द मुझे हौंसला देते। अपने दुखों से लड़ने का तब मुझे एक ही रास्ता सूझता था वह था मुझे ख़ुद को काम में झोंक देने का। आज उसी मेहनत का फल था कि मैं और ज़िम्मेदारी वाले पद पर यहां वापस आई हूं। अपने विचारों को विराम देते हुए मैंने अपने असिस्टेंट को बुलाकर निर्देश दिए, "मैं विभाग से जुड़े सभी छात्रों से मिलना चाहती हूं। इसलिए उनके साथ मेरी एक मीटिंग रखें।" अगले दिन मीटिंग में पूर्व इंचार्ज ने मेरे परिचय कराया। मैंने यह बात नोट कि एक लड़का अपनी भावपूर्ण आंखों से मुझे चोरी-चोरी देख रहा है। उसका नाम अनुज था। अनुज त्रिपाठी। कॉलेज से वापिस आने के बाद मैं बिस्तर पर पड़ी उस लड़के के विषय में ही सोच रही थी कि फ़ोन घनघना उठा। मैंने बेदिली से फ़ोन उठाया। उधर से आवाज़ आई. "वसुंधरा मैम, मैं अनुज बोल रहा हूं, अनुज त्रिपाठी।" अब तक मैं समझ चुकी थी कि वह वही लड़का है। मेरे ख़ामोश रहने पर उधर से फिर आवाज़ आई," मैम, मैं असमय फ़ोन करने के लिए माफ़ी चाहता हूं। मैंने इसलिए फ़ोन किया था कि यदि आपको कोई परेशानी हो तो मुझे ज़रूर बताइएगा। मैं फ़ौरन हाज़िर हो जाऊंगा।" फिर उसने अपना फ़ोन नंबर भी नोट कराया। मैंने भी धन्यवाद कहकर फ़ोन रख दिया।

समय गुज़रता जा रहा था। अनुज से आमने-सामने कोई बात नहीं हुआ करती थी। पर वह अपनी भावपूर्ण आंखों से मुझे ज़रूर देखा करता था। उसका इस प्रकार देखना मुझे परेशान कर देता था। धीरे-धीरे मुझे उसके बारे में काफ़ी जानकारी हो गयी थी। यही कि वह एम.ए. का छात्र है। स्वभाव से अंतर्मुखी है। वह पढ़ने में काफ़ी होशियार है। उसकी उम्र 23-24 के आस-पास है। जब मैं वापस घर पहुंची तो घर में मौसी को पाया। अपूर्व के जाने के बाद से मौसी मेरे बहुत ध्यान रखती थीं और तीन-चार माह में एक बार मेरे हालचाल लेने चली आती थीं। मैंने यह महसूस किया कि मौसी मुझसे कुछ कहना चाहती हैं। मगर वह जब भी बात करती मैं टाल जाती। मैं जानती थी कि वह क्या कहेंगी? कहेंगी कि तू शादी कर ले। इस सवाल से मैं कबसे बचती आ रही थी। पर आख़िर एक दिन उन्होंने मुझे पकड़ ही लिया, "वासु, आख़िर कब तक तू इन परछाइयों

के पीछे भागेगी? कुछ अपने बारे में भी सोच... तीस को पार होने को आई है। किसी की यादों के सहारे कब तक जिया जा सकता है?" मैं ख़ामोश थी। लेकिन मौसी ने तो जैसे ठान ही रखा था कि वह इसका जवाब आज लेकर ही रहेंगी। हारकर मुझे कहना ही पड़ा, "मौसी, आप मुझसे शादी की बात न किया करें। मैंने अपने जीवन मैं सिर्फ़ एक को चाहा है... और बेहद टूटकर चाहा है... और फिर मैं तो अपूर्व की यादों के साथ बहुत ख़ुश हूं। मेरे दिल से अपूर्व नहीं निकल सकते। ऐसे में मैं किसी दूसरे के साथ अन्याय नहीं कर सकती। मैं किसी दूसरे को पूरा प्यार नहीं दे पाऊंगी, आप ही बताये, क्या मैं उसके साथ न्याय कर पाऊंगी? मैं किसी दूसरे का जीवन बर्बाद नहीं करना चाहती।" इतना कहकर मैं अपने कमरे में आ गयी और शायद मौसी ने भी मेरे मूड देखकर इस विषय पर आगे बात करना ठीक न समझा। वह मेरे स्वभाव जानती थीं कि मैं कितनी ज़िद्दी हूं।

आज जब मैं कॉलेज पहुंची तो लड़के-लड़कियां लाल गुलाब हाथों में लिए इधर-उधर घूम रहे थे। अरे, तो आज रोज डे है। मुझे सहसा याद आया और साथ ही याद आए वे सजीले दिन जब अपूर्व साथ थे। तब उन दिनों आजकल की तरह सब कुछ खुलेआम नहीं होता था कि लड़के-लड़कियां हाथों में गुलाब के फूल लिए प्रपोज करते फिरते थे। तब सब की निगाहों से छुपकर चोरी-चोरी फूल दिए और लिए जाते थे। जब अपूर्व ने मुझे पहली बार फूल दिए थे रोज़ डे पर तो उन्होंने इसके लिए कॉलेज से दूर सारनाथ जैसी शांत जगह का चयन किया था। महात्मा बुद्ध के ज़माने में जहां कभी चंचल हिरन विचरण करते होंगे उसी डियर पार्क में अपूर्व ने 'धम्मक स्तूप' को हमारे प्रेम का साक्षी बनाया था।

मैं अपने रूम में आ गयी। अभी अपनी सीट पर बैठी ही थी कि प्यून आ गया और कहने लगा, "मैडम मुझे आज की छुट्टी दे दीजिए। मुझे अपने बच्चे को दवाई दिलवाने जाना है।"

मेरे पास भी स्वयं का कोई विशेष काम न था। अगर निकल भी आया तो स्वयं कर लूंगी यही सोच मैंने उसे छुट्टी दे दी। मैं फाइल खोलकर कुछ ज़रूरी पेपर्स पर साइन कर ही रही थी कि किसी ने अंदर आने की आज्ञा मांगी। मैंने नजरें ऊपर की तो देखा वह अनुज था। वही भावपूर्ण आंखों वाला लड़का। उसके हाथ में एक लाल गुलाब की कली थी। अब तक मैं उसके इरादे समझ चुकी थी और ख़ुद को इसके लिए तैयार भी कर चुकी थी। वह गुलाब का फूल लिए सामने खड़ा था और मेरे दिल इतनी तेज़ धड़क रहा था कि मानो पसलियों की दीवार तोड़कर बाहर आ जायेगा। फिर भी मैंने ख़ुद को ऊपर से सामान्य बना रखा था। इतने में अनुज ने चुप्पी तोड़ते हुए धीरे से कहा, "वसुंधरा जी, मुझे आपसे एक ज़रूरी बात करनी है।"

"जी कहें?" मैंने अपना सिर फाइल से हटाकर उसकी तरफ़ देखा। "वसुंधरा जी, मैं आपको वेलेंटाइन-डे विश करना चाहता हूं।" अनुज ने गुलाब का फूल मेरी ओर बढ़ाया। मैं उसकी बात का अर्थ समझ चुकी थी। पर बात को घुमाकर बोली, "थैंक्यू! पर तुम रेड गुलाब क्यों लाए? वाइट क्यों नहीं?" मैं तुम्हारी अच्छी दोस्त बन सकती हूं, पर चलो कोई

बात नहीं। मैं तुम्हें अपनी ओर से दे देती हूं। मैंने सामने रखे गुलदस्ते में से सफ़ेद गुलाब की एक कली उसकी ओर बढ़ा दी। मगर यह क्या? शांत रहने वाला यह लड़का एक दम भड़क उठा और ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगा, "वसुंधरा जी, क्या आज तक मेरी फीलिंग्स आप से छुपी रही हैं? क्या आप वाक़ई इससे इतनी अनजान हैं? या जानना ही नहीं चाहतीं? सुनिए मिस, मैं आपसे दोस्ती नहीं, शादी करना चाहता हूं..." अनुज ग़ुस्से में बोले जा रहा था। "मैं आपको ज़िंदगी की सारी खुशियां दूंगा... सारा संसार आपके क़दमों में लाकर रख दूंगा... हमेशा आप का साथ दूंगा..."

मैं ख़ामोश थी। मुझसे कोई प्रतिक्रिया न पाकर वह बेचैन हो उठा।

"आप कोई जवाब क्यों नहीं देती? आख़िर क्या कमी है मुझमें...पढ़ा लिखा हूं... हैंडसम हूं... अच्छे परिवार से हूं... और क्या चाहिए वसुंधरा जी... कुछ तो बोलिए... प्लीज बोलिए..." वह लगभग मेरे सामने विनती कर रहा था।

और अंत में मुझे न चाहते हुए भी कहना पड़ा, "सुनना चाहते हो? सुन सकोगे? तो लो सुनो मैं किसी की ब्याहता हूं...साथ ही विधवा भी।"

"मैं जानता हूं।" थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने फिर शांत स्वर में कहा, "मुझे आपके अतीत के विषय में सब जानकारी है।"

मैंने सोचा था कि यह कम उम्र का लड़का इतना सुनकर पीछे हट जाएगा। मगर वह तो सब कुछ जानता है। मुझे घोर आश्चर्य हुआ। लेकिन, मैं भी हार मानने वाली नहीं थी। मैंने उसे समझाने की ग़रज़ से कहा, "अनुज, मैं तुमसे क़रीब आठ साल बड़ी हूं। तुम दस साल बाद तक जवान रहोगे। मगर मैं तो बूढ़ी हो जाउंगी। मेरे ये जो बाल हैं न, इनमें चांदी आ जाएगी... और तुम भी ऊब जाओगे मुझसे... मैं शायद ही तुम्हें अपने दिल में जगह दे पाऊं, क्योंकि यहां तो अपूर्व की यादों का बसेरा है। तुम्हीं बताओ, क्या ऐसे में मैं तुम्हारे साथ न्याय कर पाऊंगी? तुम्हारे ज़िंदगी में तो अभी बहुत सारे सुनहरे मौके आयेंगे।"

लेकिन वह यह सुनने के लिए तैयार ही नहीं था, "वसुंधरा जी प्लीज... मैं सब जानता हूं... मुझे आपकी सारी बातें मंजूर हैं। आप जैसे चाहो वैसे रहना।"

मैं निरुत्तर थी। फिर भी मैंने उसे टालने की एक और कोशिश की, "अनुज प्लीज... अगर तुम मुझसे सच्चे दिल से प्यार करते हो तो अपना भविष्य यूं बर्बाद न करो। मैं तुमसे वादा करती हूं कि मैं जीवन भर... सारी उम्र... तुम्हारी अच्छी... सबसे अच्छी दोस्त बनकर रहूंगी। तुम्हें तो मेरे और अपूर्व के संबंधों की पहले से ही जानकारी है। तुम भावनाओं में बह रहे हो। ख़ुद को संभालो। मैं तो अपूर्व की यादों के साथ बहुत ख़ुश हूं।"

मैं अपनी बात ख़त्म कर चुकी थी। कुछ देर के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। इस बीच अनुज ने एक बार फिर अपनी भावपूर्ण आंखों से मुझे निगाह भरकर देखा। और फिर वह मेरे हाथ से सफ़ेद गुलाब की कली लेकर कमरे से बाहर चला गया। उसके इस व्यवहार से मेरे कई दिन के अशांत मन को असीम शांति मिल गयी। मेरे हाथ बरबस ही फाइलों की ओर बढ़ गए और मैंने मुस्कुराते हुए आख़री पेपर पर साइन कर दिया।

आसरा

आज सुबह मुझे उसका पत्र प्राप्त हुआ था। उसने लिखा था कि वह आदेश से शादी करने वाली है। आदेश बहुत अच्छा लड़का है। सारी बात तय हो चुकी है। पर वह चाहती है कि मैं एक बार आदेश से मिल लूं। यदि आदेश मुझे पसंद आ जाता है तभी वह उससे शादी करेगी। यानी मेरी सहमती ज़रूरी है। और हां, यहां भी कुछ ऐसी ही स्थिति बन पड़ी है। मैं भी शादी के लिए तैयार हूं। विभा सुंदर लड़की है पर मैं भी चाहता हूं कि सौम्या भी विभा को एक बार देखकर पास कर दे, तभी मैं हां करूं। सच तो ये है कि हमेशा ही जब मेरी पसंद पर सौम्या की स्वीकृति की मोहर लग जाती थी, तभी मैं वह काम करता था। मेरे यह विश्वास था कि सौम्या मेरे लिए मुझसे कहीं बेहतर सोचती है। मैंने उसे लिख डाला था और जवाब में उसने विभा से मिलने के लिए हां कह दिया था। तय हुआ कि जब वह

विभा से मिलने आएगी तो साथ में आदेश को भी ले आएगी।

उसके पत्र ने मेरे अंदर ऊर्जा भर दी थी। अब मैं जल्द-से-जल्द यह ख़बर विभा को बताना चाहता था। मैंने उसे फ़ोन किया और भावातिरेक में यह भी कह गया कि बस एक बार सौम्या तुम्हें पसंद कर ले, फिर हम शादी कर लेंगे। मैंने अति-उत्साह में यह बात कह तो दी, लेकिन विभा को यह बात चुभ गयी थी शायद।

फ़ोन के थोड़ी देर बाद हम एक शांत स्थान पर बैठे थे। मैं इतना प्रसन्न.. इतना उत्साहित था कि बोले ही जा रहा था। विभा ने शांत भाव से पूछा था कि मैं सौम्या को कब से जानता हूं। मैंने जब उसे सौम्या के बारे में बताना शुरू किया तो रुका ही नहीं।

“मैं और सौम्या एक साथ पढ़ते थे। पहले स्कूल में फिर कॉलेज में। हमारा घर आस-पास था। हम साथ स्कूल जाते... फिर कॉलेज... फिर युनिवर्सिटी। हमारी कोई भी बात एक-दूसरे से छिपी नहीं रहती। वह पढ़ने में बहुत होशियार थी... बहुत मेधावी थी। वह मेरे साथ देर रात तक जागकर पढ़ती। मेरे लिए नोट्स बनाती। पिता जी की डांट से बचाती। ज़रूरत पड़ने पर उधार रूपए भी दे देती और इसके बदले में मैं उसे अपनी बाइक पर कॉलेज लाता और ले जाता। उसे कहीं भी जाना होता तो मेरे सिर पर सवार हो जाती कि मैं उसे छोड़कर आऊं। अगर मैं मना करता तो धमकी देती कि अंकल से कह कर कोर्ट मार्शल करवा दूंगी।”

विभा मुझे एकटक देखे जा रही थी। मुझे एहसास ही नहीं हुआ कि वह मेरी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं ले रही थी। फिर भी मैं अतीत की यादों में खोया एक रौ में उसे बताए जा रहा था। “न कभी उसने महसूस किया कि मैं एक लड़का हूं और न ही मैंने कभी महसूस किया कि वह एक लड़की है। मुझे अगर कोई परेशानी होती तो वह फ़ौरन समझ जाती। हमारी दोस्ती हर बंधन से ऊपर थी। मैं शुरू से ही बहुत जल्दी हताश हो जाता था। वह हमेशा मुझे हिम्मत बंधाती... मेरी छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखती। उसे यह भी चिंता होती कि मैंने समय से खाना खाया है कि नहीं। अगर मैं दो दिन के लिए बाहर जाता तो उसे इतना मिस करता कि एक दिन में ही लौट आता। उसे देखे बिना चैन न आता। लगता कि कुछ ख़ाली-ख़ाली है। और हां, उससे लड़ाई भी तो इतनी होती कि पूछो मत! कुछ कहना गज़ब होता... फ़ौरन वह बुरा मान जाती, फिर मनाओ।”

“एक दिन मैं यूनिवर्सिटी नहीं गया था और उसे अकेले जाना पड़ा था। वह भी मेरे कहने पर। शाम को जब वह वापस आई तो मुझ पर बरस पड़ी, ‘मना कर रही थी मैं। मुझे मत भेजो अकेले। पता है वह जयंत क्या कुछ कह रहा था।’ और इतना कहते ही वह मुझसे लिपटकर फूट-फूट कर रोने लगी। पता नहीं, उसके आंसुओं में इतनी ताकत थी या फिर आवाज़ में इतना असर कि मैं बिना सोचे-समझे जयंत से लड़ने चला गया। जयंत हमारे कॉलेज का नामी बदमाश था उसका एक बड़ा गैंग था। मैंने उसकी जमकर पिटाई की थी और उन्होंने भी मुझे ख़ूब मारा था। मुझे जब होश आया तो मैं अस्पताल में ख़ुद को पट्टियों से कसा पाया। पापा बहुत नाराज़ थे। पर मैंने किसी को भी झगड़े का कारण नहीं बताया था। सौम्या ने अस्पताल में मेरी ख़ूब सेवा की थी। ज़िंदगी यूं ही बड़े मज़े से

हंसते-खेलते हुए बीत रही थी। हम दोनों को यह पता ही न था कि इन ख़ुशियों की उम्र बड़ी छोटी है। एक दिन हमें बिछड़ना होगा। एक दूसरे से दूर जाना होगा।

और आख़िर एक दिन अमेरिका के एक कॉलेज में मेरे एमबीए में सलेक्शन हो गया। पर मेरा मन नहीं था वहां जाने का। सच तो यह था कि मैं सौम्या से दूर नहीं जाना चाहता था। घर का हर व्यक्ति मेरे न जाने का कारण जानना चाहता था। और एक शाम वह स्वयं मेरे सामने खड़े होकर पूछ रही थी कि मैं अमेरिका जाने से क्यों मना कर रहा हूं? पहले सोचा कि कोई बहाना कर दूं। पर मैं दुनिया से झूठ बोल सकता था पर उसके सामने हमेशा पकड़ा जाता। यही सोच मैंने उसे साफ़-साफ़ अमेरिका न जाने का कारण भी बता दिया। यह सुनकर वह एक दम फट पड़ी। तब उसने कहा था, "तुम जानते हो, तुम कह क्या रहे हो? पागल तो नहीं हो गए तुम? हमारी दोस्ती क्या इतनी कमज़ोर है कि दूरियां होने से टूट जाएगी? तुम मेरे अभिमान हो। जब तुम अपनी डिग्री पूरी करके अच्छी नौकरी करोगे तो सबसे ज़्यादा ख़ुशी मुझे ही होगी। मैं कहूंगी यह है मेरे दोस्त, वैभव।" वह कहती जा रही थी और मेरी रुलाई फूट पड़ी थी। जिसे देखकर वह भी स्वयं को नियंत्रित न रख सकी। फिर क्या था, हम दोनों गले लगकर रोते रहे। उसी ने सारी तैयारी की मेरे अमेरिका जाने की। मुझमें तो जैसे प्राण ही न रहे हों। वह न जाने क्या-क्या समझाती रही। पर मुझे तो जैसे कुछ सुनाई ही नहीं पड़ रहा था। उससे दूर जाना कितना मुश्किल था"

मैंने अपनी आंखों को साफ़ किया। मैं बातों-बातो में क्या कुछ कह गया और इसका मुझे ख़्याल ही नहीं रहा कि विभा इन सब बातों को कैसे ले रही थी? मैंने एक सूक्ष्म नज़र उस पर डाली। वह बहुत ही गंभीरतापूर्वक बैठी हुई थी। मुझसे जब नज़र मिली तो अनायास ही बोल पड़ी, "तुम्हारी अगर सौम्या ग्रंथावाली समाप्त हो चुकी हो तो मैं कुछ बोलूं?" मैं उसकी इस बात का मतलब नहीं समझ सका था। पर उसके कहने के भाव से समझ गया था कि जो कुछ मैंने अभी उसे सुनाया, वह उसे क़तई पसंद नहीं आया था। फिर भी मैं प्रतिउत्तर में मुस्कुराया। लेकिन मैंने यह महसूस किया कि इसे सुनकर विभा का मूड बहुत ख़राब हो चुका था। यह समझते ही मैं चुप हो गया और थोड़ी देर के लिए माहौल में सन्नाटा पसर गया। फिर विभा ने ही कहना शुरू किया, "तुम मान क्यों नहीं लेते कि तुम सौम्या से प्रेम करते हो!"

"तुम बैठे तो मेरे साथ होते हो, पर तुम्हारा मन सौम्या के पास होता है। तुम तारीफ़ मेरी करते हो पर उपमा सौम्या की देने लगते हो। तुम अधूरे हो सौम्या के बिना और मैं एक अधूरे व्यक्ति के साथ जीवन नहीं बिता सकती।" विभा ख़ामोश हो गई। मैंने देखा ग़ुस्से में विभा का चेहरा तमतमा रहा था। उसने अपना बैग उठाया और कॉफ़ी शॉप से बाहर चली गई।

उसके बाद मैंने कई बार विभा को फ़ोन किया। पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। दिन बीतते जा रहे थे। इस तरह वह दिन भी आ गया जब मैं चंडीगढ़ पंहुचा। समझ में नहीं आ रहा था कि मैं सौम्या का सामना कैसे करूंगा? कैसे बताऊंगा कि जिसने जीवन में हर

जंग जीती है, वह आज स्वयं अपनी ज़िंदगी की लड़ाई हारकर आया है। मैं समय से पूर्व ही निर्धारित स्थान पर पहुंच गया था। थोड़ी देर बाद सौम्या आती दिखाई दी,पर अकेली। हम आमने-सामने खड़े थे, पर निशब्द। दोनों की आंखे बरसने को बेताब थीं। यहां सौम्या को कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी कि आदेश क्यों नहीं आया। फिर भी ख़ामोशी तोड़ने की पहल मैंने ही की, “सौम्या हम बेवक़ूफ़ थे, जो एक-दूसरे के लिए कहीं और आसरा तलाश रहे थे। हम तो हमेशा से एक दूसरे के दिलों में बसते रहे हैं। आज मैं सबके सामने यह स्वीकार करता हूं कि मैं तुम्हारे बिना अधूरा हूं।” इतना सुनते ही सौम्या की रुलाई फूट पड़ी। उसका रोना मैं बरदाश्त नहीं कर पाया। मैंने हौले से उसका एक हाथ पकड़ा और दूसरे से उसके आंसू साफ़ किए। यह हम दोनों के ख़ुश होने का समय था।

एक थी रुमाना

मलाना जाने का विचार बस ऐसे ही बन गया था। एक दोस्त गोरों के ट्रैककिंग ग्रुप के साथ मलाना होकर आया था, शायद तभी से... उसने मलाना की ख़ूबसूरती का जो बखान किया था, उससे मलाना जाने की बात मन के किसी कोने में जमकर बैठ गई थी। मैं किसी अनदेखी जगह पर जाने से पहले उसके बारे में ढेर सारी रिसर्च करती हूं। यह रिसर्च शुरू होती है गूगल पर तस्वीरों को देखने से लेकर लोगों के अनुभव, टूरिज़्म बोर्ड की वेबसाइटों, ब्लॉगरों के अनुभवों को जानने तक। गूगल मैप पर रास्तों को नापती हुई मैं उस जगह पहुंच ही जाती हूं। फिर भी मन की तसल्ली के लिए अपने साथियों से भी चर्चा करती हूं और इस सारी कवायद का फ़ायदा यह होता है कि मैं उस जगह पर फिजिकली पहुंचने से पहले वर्चुअली पहुंच जाती हूं। मैप मुझे हमेशा से ही आकर्षित करते रहे हैं।

छोटी थी तो भूगोल की कक्षा में जब सारे बच्चे मैप भरने की बारी आने पर परेशान हो जाते थे तो मैं बड़े मज़े से मैप भरा करती थी। शायद यह गुण मुझे अपने पिता से विरासत में मिला है। भूगोल उनका भी प्रिय विषय था और देश-देश दुनिया की भौगोलिक स्थितियों की उन्हें गहरी समझ थी। इसीलिए मलाना जाने से पहले उस जगह के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी जुटा ली। पर मलाना में कुछ तो था जो मुझे अपनी ओर बरबस ही खींचे जा रहा था। शायद यह एक प्रेम कहानी थी जो पार्वती वैली में किसी चाय की दुकान में मेरे इंतज़ार कर रही थी। उस प्रेम कहानी का ही आकर्षण था कि मैं बिना कुछ सोचे-समझे मलाना जाने का प्लान बना रही थी।

गूगल ने मलाना के बारे में जो जानकारी मुहैया कराई उससे तो मैं वहां जाने के लिए और रोमांचित हो गई। मलाना हिमाचल प्रदेश की वादियों में बसा एक ख़ूबसूरत गांव है, जहां पहुंचना थोड़ा मुश्किल है। पहाड़ी पगडंडियों पर मीलों पैदल चलने के बाद ही यहां तक पहुंचा जा सकता है। शायद, इसीलिए यह जगह अभी तक आधुनिक दुनिया से कटी हुई है। यहां न तो अभी तक मोटर कार पहुंची है और न ही रेलगाड़ी। इसीलिए इस जगह की ख़ूबसूरती अभी तक अनछुई बची हुई है। यहां हिंदुस्तानी तो कम ही आते हैं, पर विदेशी पर्यटकों की बहुतायत रहती है। विदेशियों में मलाना आने का क्रेज़ बहुत है। पता नहीं वह क्या है जो इन विदेशियों को यहां खींच लाता है। हिमालय की प्राकृतिक सुंदरता का तिलिस्म या फिर यहां पैदा होने वाली एक ख़ास तरह की घास, जिसे लोग नशे के लिए इस्तेमाल करते हैं।

मलाना गांव, कुल्लू वैली में मलाना नदी के पास बसा एक प्राचीन गांव है। देवटिब्बा और चंद्रखानी पर्वत चोटियों की छाया तले बसा यह गांव अलौकिक शांति से भरा हुआ एक रमणीक गांव है। यहां के लोग दावा करते हैं कि वे आर्यों के वंशज हैं। वे भारत का हिस्सा होते हुए भी ख़ुद को यहां से अलग मानते हैं। इनकी बोली भी अलग है और रिवाज भी। इनकी भाषा कनाशी है, जिसे संस्कृत और तिब्बती बोलियों का मिश्रण माना जा सकता है। हिमाचल का दिव्य प्राकृतिक सौंदर्य और आर्य वंश के विलक्षण गुण इन लोगों को विरासत में मिले हैं। यहां की महिलाएं अप्रतिम सौंदर्य की मालकीन होती हैं। तीखे नैन-नक्श, गोरा रंग और नीली-नीली आंखें.. जैसे किसी ने नीलम पत्थर को कूटकर आंखों में जमा दिया हो। मलाना के लोगों का अपना अलग क़ानून है और वे बाहर की दुनिया के लोगों के साथ मेल-जोल नहीं रखते। बाहर की दुनिया के लोग इनके लिए अछूत हैं। इनके गांव में बाहर के किसी इंसान के आने पर कड़े क़ानून हैं जिनका यह लोग बड़ी सख़्ती से पालन करते हैं। मालाना के क़ानून और नियम के मुताबिक़ बाहर से आने वाला व्यक्ति गांव में घूम-फिर तो सकता है, लेकिन न तो वह वहां ठहर सकता है और न ही किसी वस्तु को स्पर्श कर सकता। यहां के लोग सादा जीवन बिताते हैं और इनका काम खेती-बाड़ी और जंगलों से ही चलता है।

कंप्यूटर टेबल पर बैठे-बैठे ही मैं मलाना की सैर कर आई। मालाना की वादियां मुझे बेचेन कर रही थीं। मेरे यायावर मन दिल्ली में एक पल भी रुकने को तैयार न था। कंप्यूटर

शट-डाउन किया और पैकिंग करने में बिज़ी हो गई। मलाना पहुंचने के लिए मुझे अब रात की ही बस पकड़नी होगी। मैं बच्चे की तरह उत्साहित थी, प्राकृतिक सौंदर्य से भरे उस अछूते गांव को देखने के लिए। वह जगह कितनी अलग होगी! हमारी आपाधापी से भरी ज़िंदगी से बिल्कुल जुदा! वहां किसी को कहीं पहुंचने की कोई जल्दी न होगी। मैं सारे रास्ते यही सोचती आयी थी। मेरी आंख कब लग गई, कुछ याद नहीं। हां, इतना याद है कि सपने में भी मुझे लंबे-लंबे देवदार के पेड़ दिखाई दे रहे थे।

सुबह कंडेक्टर ने जब भुंतर आने की आवाज़ लगाई तो हड़बड़ाहट से मेरी आंख खुली। मुझे यहीं उतरना होगा। मैंने टाइम देखा सुबह के सात बजे थे। यहां से टैक्सी लेकर कसोल जाना होगा। मैंने टैक्सी पकड़ी और कसोल के लिए निकल पड़ी। ड्राइवर ने एसी चालू कर दिया था। पर मैं तो हिमालय की वादियों का आनंद लेना चाहती थी। सो मैंने ड्राइवर को एसी बंद करने के लिए बोला और कार के शीशे नीचे कर दिए। हम शहर वालों को इतनी शुद्ध हवा कहां नसीब होती है! इतना सुंदर और उजला आसमान हमें देखने को कहां मिलता है! कार तेज़ी से अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ रही थी। तेज़ हवा के झोंके मेरे बाल उड़ा रहे थे। पर यह हवा जब मेरे चेहरे को छू रही थी तो बहुत भली मालूम देती थी। बिल्कुल किसी प्रिय के स्पर्श-सी। यह स्पर्श अपने साथ समेटे थी पाइन के फूलों की ताज़ी-ताज़ी महक। क़ुदरत की इतनी सुंदरता कि आंखों में न समाए। एक तरफ़ ऊंचे-ऊंचे पहाड़ जिन्हें काटकर सड़क बनाई गई है और दूसरी तरफ़ नीचे बहती पार्वती नदी। इतनी साफ़ जैसे दूध की धारा। मैं प्रकृति के इन मनोरम दृश्यों को निहारती हुई कब कसोल पहुंच गई, पता भी न चला। अब यहां से मुझे ट्रैकिंग करते हुए मलाना पैदल जाना है। मैंने कसोल के बाज़ार से खाने-पीने का कुछ ज़रूरी समान लिए और चल दी मलाना की ओर। पहाड़ों में घूमना मेरे पुराना शौक़ है इसलिए यहां मुझे कोई असुविधा नहीं होती। पहाड़ों की दुनिया बड़ी निराली होती है। चार-छह घर मिलाकर एक गांव बन जाता है। इन लोगों की दुनिया बड़ी शांत होती है। लकड़ी का बना एक घर और उससे सटे खेत या फिर फलों के बाग़। घर के पीछे बंधी गाय और घर के आंगन में सिर पर रूमाल बांधे औरतें, अपने-अपने कामों में व्यस्त... इन वीरान रास्तों पर चलते हुए आपको बिलकुल भी भय नहीं लगेगा। कहीं दूर पहाड़ों में बनी पगडंडी पर कोई चरवाहा अपनी भेड़ें लिए टहल रहा होगा। दूर परत-दर-परत फैले हरियाली से ढके पहाड़ों के बीच लाल टीन की छतों वाला घर.. दिल को राहत देते हुआ.. यह भरोसा दिलाते हुआ कि इस निर्जन से दिखने वाले पहाड़ों में भी जीवन है। यहां आप अकेले नहीं हैं, कोई और भी है जो ढलती हुई शाम में चूल्हा जला रहा है। हद्दे नज़र तक फैले एकांत को चीरता हुआ चूल्हे से उठता धुआं पहाड़ में इंसान की मौजूदगी की गवाही देता है।

इन पहाड़ों पर तेज़ धूप पड़ने के बावजूद यहां पर खिलने वाले फूल बहुत कोमल और सुंदर होते हैं। इन फूलों पर मंडराने वाली तितलियां भी सजीले चटख रंगों वाली होती हैं। इनकी दुनिया में रंग भरते हुए ईश्वर ने भी दरियादिली दिखाई है। मैं चलते-चलते थक गई तो सोचा कहीं बैठकर थोड़ा आराम कर लूं। जब आराम का ख़्याल आया तो

प्यास भी लग आई। इन पहाड़ों पर ईश्वर ने बड़े निराले ढंग से पानी का इंतज़ाम किया है। यहां थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पहाड़ों के बीच बहने वाले पानी के सोते मिल जाते हैं। छोटे-छोटे झरने जैसे ख़ास आपके लिए ही बनाए गए हों। इन्हें हम क़ुदरती प्याऊ भी कह सकते हैं। मैंने अपनी पानी की ख़ाली बोतल को पास के ऐसे ही एक झरने से भर लिया। पानी बिलकुल शुद्ध और साफ़... स्प्रिंग वाटर.. ढेर सारे मिनरल्स के साथ।

थोड़ी देर आराम करने के बाद मैंने फिर चलना शुरू किया। मलाना पहुंचते-पहुंचते मुझे शाम घिर आई। अब तक मेरे पैर भी जवाब दे चुके थे। मैं बहुत थक गई थी। मैंने आसपास नज़र दौड़ाई। मलाना गांव मुझे दूर से ही दिखाई दे रहा था। लकड़ी और पत्थर से बने पुराने हिमालयन हाउस, जिन्हें काठ कोनी के घर कहा जाता है। बिलकुल सपनों में आने वाले घर। ये गिनती में ज़्यादा तो नहीं थे, पर अनोखे थे। लोग सही कहते हैं, इन मलाना के लोगों ने अपनी परंपराओं के ज़रिये पुरानी यादों को अभी भी ताज़ा बनाए रखा है। हिमालयन वास्तुकला के बेजोड़ नमूने, माडर्न इंजीनियरिंग और प्राचीन वास्तु कला का नायाब संगम। कहते हैं ये घर भूकंप के झटके भी बड़ी आसानी से झेल जाते हैं। इन्हें लकड़ी से ऐसे बनाया जाता है कि भूकंप आने के साथ यह अपनी जगह से हिलें और फिर वापस वहीं फिक्स हो जाएं।

मुझे चाय की तलब हो रही थी। मैंने नज़दीक बनी एक चाय की दुकान पर चाय पीने की सोची। मुझे आस-पास कोई दिखाई नहीं दिया। लकड़ी की बनी यह एक छोटी-सी दुकान थी, जिसके पीछे एक छोटा सा घर था और साथ ही लगा एक छोटा खेत। मैंने आवाज़ दी, 'कोई है... कोई है.....?"

पास के बाग़ में एक बूढ़ी पहाड़ी महिला काम कर रही थी, पर उसने मेरी आवाज़ पर कोई ध्यान नहीं दिया। मैंने दुकान में पड़ी बेंच पर अपना बैग रखा और किसी के आने का इंतज़ार करने लगी। मैं बहुत थक चुकी थी, इसलिए थोड़ा सुस्ताना चाहती थी।

"नमस्ते!" किसी की अंग्रेज़ी मिली हिंदी ने मुझे चौंकाया। मैंने सिर उठाकर उस आवाज़ की दिशा में देखा। नमस्ते कहने वाला एक अंग्रेज़ था, जो कि अभी-अभी दुकान में पीछे के दरवाज़े से अंदर आया था।

"आपको कुछ चाहिए?" भारतीय पोशाक और सिर पर हिमाचली टोपी पहने उस अंग्रेज़ ने पूछा।

"जी, मुझे एक कप चाय मिल सकती है?" मैंने थोड़ी-सी हैरानी मिश्रित स्वर में कहा।

हिमालय में किसी अंग्रेज़ को देखना कोई हैरानी की बात नहीं है। यहां पर ख़ूब अंग्रेज़ आते हैं, लेकिन किसी अंग्रेज़ को चाय की दुकान चलाते देखना, मुझे थोड़ा हैरान कर रहा था। मैं जानती थी कि पहाड़ी लोग वैसे तो बाहर से आने वाले लोगों का खुले दिल से स्वागत करते हैं। लेकिन, वह लोग यहां आकर बस जाएं, यह इन पहाड़ियों को गवारा नहीं होता है। और फिर यह तो मलाना जैसे गांव के बाहर दुकान खोले बैठा है। मलाना, वह गांव जो बाहर की दुनिया के लोगों को अपवित्र मानता है।

मैं यह सोच ही रही थी कि इतने में मेरी गर्मा-गर्म चाय आ गई। उसने चाय मेज़ पर रखते हुए पूछा, “आप चाय के साथ कुछ खाना पसंद करेंगी?”

मैंने मना कर दिया। मैंने चाय का एक लंबा घूंट भरा। चाय अच्छी थी। अब थोड़ी ठंड भी बढ़ गई थी। मैंने बैग से जैकेट निकाल कर पहन ली। पहाड़ों में जब तक खिली धूप रहती है, तब मौसम सुहाना रहता है और सूरज के छुपते ही अचानक ठंड बढ़ जाती है। शाम होते-होते थोड़े बादल भी घिर आए थे, लगता है बारिश होने वाली है। हवा में ठंड थोड़ी बढ़ गई है। यहां कभी भी बारिश हो जाया करती है। मैंने चाय ख़त्म की और सोचा कि इस चाय वाले से ही मलाना की थोड़ी जानकारी ले लूं। मैं उससे पूछने ही वाली थी कि उसने पूछ लिया, “आप मलाना देखने आई हैं?”

“आप बहुत अच्छी हिंदी बोलते हैं।” मैंने उसे काप्लिमेंट दिया।

वह मुस्कुराया।

“क्या आप मुझे बता सकते हैं कि मलाना जाने के लिए शार्टकट रास्ता कौन सा रहेगा?” मैंने उसके सामने अपना मैप बढ़ा दिया। “मैम, आप अभी मलाना नहीं जा सकतीं। अब रात होने को है। इस गांव में आप रात में नहीं जा सकती। आपको कल सुबह जाना चाहिए।”

“अच्छा, क्या यहां आसपास कोई होम स्टे होगा, जहां मैं रात गुज़ार सकती हूं?” मलाना न देख पाने की हताशा को छुपाते हुए मैंने उससे पूछा।

“जी, आप हमारे होम स्टे में आराम से रात गुज़ार सकती हैं।”

पहाड़ों पर यही अच्छी बात है, यहां ठहरने की कभी कोई परेशानी नहीं होती है। यहां लोग अपने घरों में होम स्टे चलाते हैं और सस्ते रेट पर वह रात गुज़ारने के लिए कमरा दे देते हैं।

मैंने भी सोचा कि आज काफ़ी ट्रैकिंग हो गई है, रात यहीं बिताई जाए। मलाना अब कल दिन में ही जाया जाए।

“आप आएं मेरे साथ, मैं आपको रूम दिखा देता हूं। बाई द वे आई एम डेविड।” उसने अपना नाम बताया।

“और मैं नंदिता।” मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया। मैंने नोटिस किया कि डेविड ने पहली बार इंग्लिश में कुछ बोला था।

हम दुकान के अंदर से होते हुए पीछे बने छोटे से काटेज में पहुंच गए। डेविड ने ताला खोला। यह एक छोटा-सा दो कमरों का काटेज था। जिसमें एक ओर पलंग बिछा था और उस पर मोटी रज़ाई रखी थी। साइड में एक अलमारी थी और बराबर में एक दरवाज़ा। शायद बाथरूम का रहा होगा। मैंने बैग रखा और पलंग पर बैठ गई।

“अब आप आराम करें। किसी भी चीज़ की ज़रूरत हो तो दुकान के बराबर में ही हमारा घर है, आप मुझे आवाज़ दे सकती हैं।” मुझे ज़ोरों की भूख लगी थी। मैंने पूछा, “कुछ डिनर का इंतज़ाम हो सकता है क्या?”

“जी, हम अलग से तो किचन नहीं चलाते हैं, लेकिन अगर आप चाहें तो हमारे साथ

रात का खाना खा सकती हैं। हमारे घर में आप को सादा घर का खाना मिल जाएगा।"

मुझे बहुत भूख लगी थी। वैसे भी पहाड़ों में खाने को घर का खाना मिल जाए तो फिर कहना ही क्या। मैंने तुरंत हां कर दी।

"आप फ्रेश हो जाइए, मैं आपका खाना यहीं ले आता हूं।" इतना कह वह अंधेरे में ओझल हो गया। मैं फ्रेश होकर बैठी ही थी की वह खाना ले आया। डेविड एक लंबा चौड़ा छह फिट का ख़ूबसूरत नौजवान था। मैं तय नहीं कर पा रही थी कि व अमेरिकन था या फ्रेंच।

"और कौन-कौन रहता है यहां?" मैंने जिज्ञसावश पूछा।

"एक बूढ़ी मां, उनका बेटा और मैं।" डेविड ने जवाब दिया।

"अच्छा, मैंने देखा था उनको। वह खेत में काम कर रही थीं। पर उन्होंने मेरी बात का कोई जवाब नहीं दिया था। मैंने उन्हें कई आवाज़ें लगाई थी।"

"जी, वह थोड़ा ऊंचा सुनती हैं।" डेविड ने स्पष्ट किया।

"ओके, वह तुम्हारी मां है?"

"नहीं, मेरी पत्नी की मां हैं।"

"अच्छा!!!"

"डेविड, आप इतनी अच्छी हिंदी कैसे बोल लेते हैं?" मैंने पूछा।

"बस यहां के लोगों के साथ रहकर सीख ली।" वह हल्के से मुस्कुराया।

"डेविड, आप कहां से हैं?"

"मैं फ्रांस से हूं।"

"मैम, आप खाना खाइए, यह ठंडा हो जाएगा। कल मैं आपको मलाना ले चलूंगा।" वह गुड नाइट कहकर चला गया।

मैंने खाना खाया और सोने के लिए बिस्तर में घुस गई। गर्म रज़ाई में मुझे झट से नींद आ गई। सुबह एक कोयल की मीठी कूक से मेरी आंख खुली। मैंने बिस्तर से उठकर खिड़की के पर्दे सरकाए। सामने दूर तक फैली बर्फ़ से ढकी चंद्रखानी की चोटियां दिखाई दे रही थीं। आसमान नीला था और यहां-वहां बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े धुनी हुई रुई की तरह आसमान में बिखरे हुए थे। पास ही बहती नदी का शोर कानों को बड़ा मीठा लग रहा था। मैंने चप्पल पहनी और बाहर बरामदे में आकर खड़ी हो गई। सामने डेविड की झोंपड़ी की चिमनी से धुआं निकल रहा था। घर के आंगन में एक सुंदर-सी बच्ची बड़े-बड़े बालों वाले अंगोरा खरगोशों के साथ खेल रही थी। पास ही एक महिला बैठकर बांस की डलिया बुन रही थी। मैंने देखा सामने से डेविड हाथ में चाय का फ़्लास्क लिए चला आ रहा है।

"गुड मार्निंग मैम!" उसने मुस्कुराते हुए कहा।

"गुड मार्निंग डेविड।" मैंने जवाब दिया।

"आप नाश्ता यहीं करेंगी या फिर घर में आकर?" उसने पूछा।

"मैं वहीं आकर खाऊंगी।" मैंने जवाब दिया

मैंने फ़्लास्क से चाय पल्टी और वहीं बरामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। मेरी आंखों के सामने जो नज़ारा फैला हुआ था, वह शायद किसी भी पहाड़ी गांव के लिए रोज़ की बात होती होगी, पर मेरे लिए यह एक पेंटिंग जैसा था। बैक ग्राउंड में दूर बर्फ़ से ढकी चोटियां, एक स्लेटी रंग के पत्रों से बनी ढलवां छत वाली लकड़ी की झोंपड़ी, जिसके पीछे देवदार के ऊंचे-ऊंचे पेड़, झोंपड़ी से लगा एक आंगन, जिसमें धूप सेंकती एक बूढ़ी महिला और उसके पास खरगोशों से खेलती एक छोटी बच्ची।

है न किसी पेंटिंग जैसा दृश्य! मैं मुस्कुराई और काफ़ी देर तक इस ख़ूबसूरत नज़ारे को आंखों से गर्म चाय के साथ घूंट-दर-घूंट पीती रही। फिर मैंने अपनी चाय ख़त्म की और नाश्ता करने डेविड के घर की तरफ़ चल दी। मैंने आंगन में बैठी बूढ़ी माई को नमस्ते किया। उन्होंने भी अपने बिना दांतों वाले पोपले मुंह पर मुस्कान सजाते हुए मेरे नमस्ते स्वीकार किया। डेविड ने मुझे अंदर ही बुला लिया। पहाड़ी घर बाहर से जितने खुरदुरे होते हैं, अंदर से उतने ही नर्म और कोज़ी होते हैं। घर के अंदर एक सिरे पर बैठने के लिए नीचे बिस्तर बिछा हुआ था और कम ऊंचाई वाली छोटी मेज़ लगी हुई थी। दूसरे सिरे पर एक छोटा-सा किचन था। जहां पर डेविड खाना बना रहा था। मुझे हैरानी हुई। मैं सोच रही थी कि डेविड के घर में कोई महिला होगी जो खाना बनाती होगी। पर वहां तो कोई न था। मैंने चारों तरफ़ नज़र घुमाकर घर का जायज़ा लिया। घर में ज़रूरत भर का समान था। दीवार पर कुछ देवी-देवताओं की फ़ोटो के साथ एक फ़ोटो फ्रेम में किसी लड़की की तस्वीर लगी हुई थी, जिस पर माला चढ़ी हुई थी। वह एक ख़ूबसूरत लड़की थी। मैं एकटक उसे देख रही थी। उसकी सुंदरता किसी पहाड़ी फूल जैसी थी... वाइल्ड फ़्लावर..

मुझे उस तस्वीर को देखते हुए डेविड ने नोटिस किया। मैं पूछना चाहती थी पर झिझक में नहीं पूछ पाई।

डेविड ने ख़ुद ही बताया, “यह रुमाना है, मेरी बेटी की मां।”

“तुम्हारी पत्नी!”

“हां, अगर शादी हो गई होती तो यह मेरी पत्नी होती।” डेविड एक फीकी-सी मुस्कान के साथ बोला। उसका चेहरा किसी स्याह मायूसी से एक पल को मलिन हो गया।

“क्या मतलब?” अब मैं अपनी जिज्ञासा को रोक न सकी।

“यह एक लंबी कहानी है, आप नाश्ता करें, ठंडा हो जाएगा।” डेविड ने हौले से कहा।

मैंने ख़ामोशी से नाश्ता किया। पर मैं बेसब्री से जानना चाहती थी। डेविड जूते पहनकर चलने को तैयार था। मैंने भी नाश्ता समाप्त किया और बाहर आ गई। डेविड ने कनाशी भाषा में उस बुज़ुर्ग महिला से कुछ कहने के बाद बच्ची को गोद में उठाकर चूम लिया।

बच्ची बहुत सुंदर थी वह अंदर टंगी तस्वीर वाली लड़की और डेविड का मिला-जुला रूप थी। मैंने अपने बैग से चाकलेट निकाला और उस बच्ची को दे दिया। बच्ची ने बड़े प्यार से थैंक-यू बोला और हम मलाना गांव देखने निकल गए।

यह संकरी पगडंडी वाला एक ख़तरनाक रास्ता था। अच्छा हुआ मैं डेविड के साथ आई, वरना खो भी सकती थी। यहां समझ भी नहीं आ रहा था कि जंगल में किस तरफ़ जाया जाए। डेविड बड़ी होशियारी से किसी पेशेवर ट्रैकर की तरह आगे बढ़ा चला जा रहा था।

मैंने पूछा, "डेविड, इफ़ यू डोंट माइंड, कैन ई आस्क यू समथिंग?"

"यस!" उसने कहा।

"मुझे ऐसा लग ही नहीं रहा कि मैं अपने देश में ही हूं। जबकि तुम फ्रांस से हो और इस जगह को इतनी अच्छी तरह से जानते हो कि मुझे फील हो रहा है कि मैं शायद विदेश से यहां आई हूं। "

डेविड मेरी बात पर ख़ूब हंसा।

"आप ऐसा समझ लीजिए कि मैं इस जंगल को बहुत लंबे वक़्त से जानता हूं। मैं बड़ा भले ही फ्रांस में हुआ था पर मेरी आत्मा यहीं कहीं हिमालय के जंगलों में भटक रही थी। मुझे पता नहीं कि मैंने अपनी ज़िंदगी के इतने साल वहां कैसे गुज़ारे? जबकि मैं बचपन से ही यहां आना चाहता था। मुझे सपनों में यही नीला आकाश और विशाल हिमालय दिखाई देता था। मैंने अपने देश में और यूरोप में कई सारे पहाड़ देखे पर हिमालय जैसा कोई भी नहीं। शायद मेरी आत्मा का कोई अंश यहां था जो मुझे यहां तक खींच लाया। कुछ पिछला-हिसाब किताब बाक़ी था जिसे इस जनम में चुकाना रहा होगा।" डेविड अचानक किसी दार्शनिक की तरह बात करने लगा। मेरे चेहरे पर कुछ न समझ आने वाले भाव देख वह मुस्कुराकर बोला,

"आपने प्राडा का नाम सुना है?"

"हां, वही जो अपने फैशन के लिए मशहूर है?" मैंने लापरवाई से पूछा

"जी हां, मैं मिलान में था और प्राडा के लिए फैशन डिज़ाइनिंग करता था।"

"यू मीन तुम फैशन डिज़ाइनर थे? वो भी प्राडा के लिए?" अब मुझे हैरानी हुई।

"फिर यहां कैसे पहुंचे?" डेविड की कहानी की एक और नई पर्त मेरे सामने खुल रही थी। अब मैं अपने आप को और नहीं रोक सकती थी। जिज्ञासावश बोल पड़ी, "डेविड मुझे अपनी कहानी सुनाओगे?"

"ओके।" डेविड ने कहा।

"मैं एक तेज़ भागती हुई ज़िंदगी का हिस्सा था.. लाइट्स, लग्जरी, मॉडेल्स, पैसा, शराब और रोज़ बदलते रिश्ते.. यही थी मेरी ज़िंदगी... और मैं उसमें ख़ुश भी था.. फैशन शो और मॉडेल्स, ढेर सारी चमक और चकाचौंध।

मैं दिन-रात मेहनत करता। मेरी एक गर्लफ्रेंड थी सुज़ेना, वह एक मॉडल थी। हम एक साथ ख़ुश थे। यह मेरी ज़िंदगी का वह रिश्ता था जिसे मैं शादी में बदलना चाहता था। मैं इस रिश्ते को लेकर सीरीयस था पर सुज़ेना नहीं थी। जिसका मुझे बाद में पता चला था। वह मुझे फैशन की दुनिया में आगे बढ़ने के लिए सिर्फ़ एक सीढ़ी की तरह इस्तेमाल कर रही थी। हमारी शादी तय हो चुकी थी। मेरे घरवाले रिश्तेदार और दोस्त सब

चर्च में शादी के लिए जमा हुए थे पर वह नहीं आई। मैं उसका इंतिज़ार करता रहा। उसका सिर्फ़ एक मैसेज आया कि वह शादी नहीं करना चाहती है। मैं खड़ा-का-खड़ा रह गया। मेरे दोस्तों में, मेरे साथियों में मेरी एक इज़्ज़त थी, जिसे वह एक झटके में बर्बाद करके चली गई थी। मेरे दिल टूट गया। मैं इस सदमें को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। किसी काम में दिल न लगता। इसलिए मैंने मिलान छोड़ने का फ़ैसला किया। मैं शांति की तलाश मैं कई जगह गया पर कहीं दिल को सुकून न मिला। फिर मेरे एक दोस्त ने सलाह दी कि मुझे हिमालय में जाना चाहिए, कहते हैं यहां बहुत सुकून है। वह अक्सर इंडिया आता था। तो मैंने भी इंडिया आने का प्लान बना लिया। हम हिमाचल में पार्वती वैली पहुंचे। यहां से हम मलाना की ट्रेकिंग करने निकले थे। मैं अपनी धुन में जंगल में चलता चला गया और अपने साथियों से बिछड़ गया। मुझे वक़्त का होश ही नहीं रहा। रात घिर आई थी। मुझे अहसास ही नहीं हुआ था कि यहां जंगली जानवर भी होते हैं। मुझ पर एक लकड़बग्गे ने हमला कर दिया। मुझे अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दिया और मैं जब ख़ुद को बचाने के लिए पीछे हुआ तो मेरा पैर फिसल गया, मुझे सिर्फ़ इतना याद है कि मैं किसी गहरी खाई में गिरा जा रहा था। उसके बाद मुझे होश नहीं रहा। मैं कितने दिन बेहोश रहा मुझे कुछ याद नहीं। मेरे साथी मुझे ढूंढ-ढूंढकर वापस लौट गए। उन्होनें समझा कि मैं शायद किसी हादसे का शिकार हो गया। मैं जंगल में बेहोश पड़ा हुआ था। मेरे काफ़ी चोटें आई थी। मैं तो ठंड से मर ही जाता अगर रुमाना ने मुझे वहां पड़ा नहीं देख लिया होता।"

"अच्छा तो तुम रुमाना से इन्ही जंगलों में मिले थे।" मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

"जी, रुमाना जंगल में जड़ी-बूटियां बीनने जाया करती थी। उसने मुझे घायल देखा तो मुझे बचाया। वो एक नाज़ुक-सी लड़की थी इसलिए शायद मुझे उठाकर गांव तक नहीं ले जा पाई होगी। उसने मुझे पास ही एक पेड़ की खोखले तने में घसीटकर पहुंचाया। उसने आग जलाई और मेरी मरहम पट्टी की। मुझे दो रातों तक होश न आया। जब मुझे होश आया तो मैंने अपने नज़दीक एक बेहद ख़ूबसूरत लड़की को पाया। मैं उसका शुक्रगुज़ार था। उसने मेरी जान बचाई थी। मैंने आज तक अपने नज़दीक जितनी महिलाओं को पाया था उनमें से कोई भी बिना मतलब के किसी के लिए कुछ भी करने में कोई विश्वास नहीं रखती थी। और इस अंजान लड़की ने मुझ अजनबी की जान बचाई थी।

वह मुझ पर झुकी अपनी नीली-नीली आंखें फाड़े मुझे एकटक देखे जा रही थी। मेरे होश में आने की उसे ख़ुशी हो रही थी या हैरानी मैं समझ नहीं पाया। मैंने उसे बात करना चाही पर वो मेरी भाषा नहीं समझती थी और मैं उसकी भाषा नहीं जानता था। वो बहुत सुंदर थी। मुझे यह कहने में कोई शर्म नहीं है कि मैंने आज से पहले इतनी सुंदर लड़की नहीं देखी थी। मैं जिस दुनिया में काम करता था वहां पर एक-से-बढ़कर-एक हसीनाएं थीं। पर उनमें से कोई भी प्योर नहीं थी न ही तन से और न ही मन से। सबने प्लास्टिक सर्जरी से अपने नैन नक़्श ठीक करवाए हुए थे। सब कुछ नक़ली। नक़ली चेहरा नक़ली बातें सब कुछ नक़ली...

मौसम शायद ख़राब होने वाला था। उसने आसमान की ओर नज़र उठा कर जायज़ा लिया। फिर वह उठकर चली गई। थोड़ी देर बाद आई तो मुझे सहारा देकर पास के ख़ाली मकान में ले गई। मेरी हालत ऐसी न थी कि मैं जंगल से शहर की तरफ़ अपने आप चलकर जा सकता था। हिमालय में जंगलों में भी आपको ऐसे ख़ाली घर मिल जाते हैं, जहां पर रहकर आप सर्दी और पानी से अपनी जान बचा सकते हैं। भेड़-बकरियां चरानेवाले लोग अपना काम चलाने के लिए मिट्टी और फूंस से कच्चा घर बना लेते हैं कुछ समय वहां रहकर यह चरवाहे घर को वैसा-का-वैसा छोड़कर आगे निकल जाते हैं कि किसी और के काम आ जाए। ऐसे ही किसी घर में हमने शरण ली थी। उसने दिन रात एक करके मेरी सेवा की। मेरे पैर में बहुत चोट थी। वह रोज़ मेरी पट्टी किया करती, उसे जंगली जड़ी-बूटियों का अच्छा ज्ञान था। वह रोज़ जंगल से अलग-अलग तरह के पत्ते और घास ढूंढकर लाती और मेरे घावों के लिए लेप तैयार करती। मैं बिस्तर में पड़ा-पड़ा अपने ठीक होने का इंतिज़ार किया करता। वह दिन में जंगल से खाने के लिए फल और सब्ज़ियों का इंतिज़ाम किया करती हमने हफ़्तों उस घर में काट दिए। हमारे बीच कोई बात न होती। पर हम इशारों से एक-दूसरे से बात किया करते। कल-कल करती नदी के किनारे बना वह मिट्टी और फूंस का मकान रुमाना के होने से घर लगने लगा था। हिमालय की बर्फ़ से ढंकी चोटियों के दामन में बसा वह वह छोटा-सा घर किसी मेंशन-सा जान पड़ता था। जिसका अपना तो कोई आंगन नहीं था पर दूर तक फैले घास के मैदान किसी आंगन से कम भी न थे। उस घर की कोई बाउंड्री न थी, पर ऊंचे-ऊंचे देवदार के पेड़ उस घर की सुरक्षा में रात दिन मज़बूती से खड़े रहते थे। उस घर को हमेशा रौशन रखने का ज़िम्मा ख़ुद सूरज और चांद ने ले रखा था। सुबह की पहली किरन के साथ सूरज घर भर को रौशनी से नहला देता और अलसाई रात को पोंछ कर पहाड़ों के पीछे फेंक देता। फिर शाम होते-होते थककर ख़ुद उसी पहाड़ के पीछे सुस्ताने चला जाता। जैसे ही वादी में शाम की सुरमई चादर लहराने लगती तो जाते-जाते सूरज एक मुट्ठी सिंदूर रात के माथे पर बिखरा कर पहाड़ों को सिरहाने बना सोने चला जाता। रात घिरती और चांद अपना काम संभालने आ जाता। यह सिलसिला ऐसे ही चलता रहता। सूरज और चांद ऐसे ही रात और सुबह के साथ अटखेलियां करते रहते। वहां हर चीज़ में लय थी, सुर था और प्रेम था। मैं बिस्तर पर पड़े पड़े रुमाना को अपने नज़दीक यहां वहां चलते फिरते देखता। वह मुझे सहारा दे घर से बाहर ले आती। पत्थरों पर बैठ में इस जगह को घंटों देखता रहता। मेरे पूरा जीवन मेरी आंखों के सामने से गुज़रने लगता। कभी गहरी उदासी मुझे घेर लेती। रुमाना मेरे उदास चेहरे को देख नज़दीक आ मेरे हाथ थाम मुझे तसल्ली देती। प्रेम और अपनाइयत से भरा स्पर्श पाकर मेरी रुलाई फूट पड़ती तो वह मुझे किसी बच्चे की तरह अपने सीने से लगा लेती। मैं रोता जाता और उसकी कमीज़ मेरे आंसुओं से भीगती जाती।

वह भी कितना अजीब था, हम बात नहीं करते थे पर एक दूसरे के मन की बात समझ जाते थे।

इस बीच हमें कब एक-दूसरे से प्यार हो गया मुझे याद नहीं। अब मैं थोड़ा चलने-फिरने लगा था। हम पार्वती नदी के किनारे बड़े-बड़े पत्थरों पर बैठ कर ट्राउट मछली पकड़ा करते। हम जंगल में साथ साथ घूमते। वह जंगल में मेरे साथ घूमती हुई एक फूल-सी लगती। कुछ समय के लिए मैं यह भी भूल गया था कि मैं कौन हूं, कहां से आया हूं और उस से कितना अलग हूं। मुझे उसमें और ख़ुद में कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आता था। मुझे उससे प्रेम हो गया था या शायद मुझे उसकी आदत हो गई थी।

अब मैं काफ़ी ठीक हो गया था। मैंने वापस जाने का सोचा। मेरे पास रुमाना से कहने के लिए कुछ भी नहीं था। यह एक अच्छा वक़्त था जो मैंने उसके साथ गुज़ारा था। मैं तय नहीं कर पा रहा था कि क्या किया जाए कि तभी मेरी तलाश करता हुआ मेरे दोस्त हैनरी वहां पहुंच गया। उसके साथ गांव का लोकल गाइड चंदू भी था। वही उसे यहां जंगल में लेकर आया था। मेरे साथी मुझे एक महीने से खोज रहे थे। मूझे ज़िंदा देखकर उन्हें बहुत ख़ुशी हो रही थी। मैं जाने के लिए तैयार था। रुमाना ख़ामोशी से घर के एक कोने में खड़ी सब देख रही थी। मैंने चलते वक़्त उसके पास जाकर थेंक यू बोला और चला आया। मैं वापस आने की ख़ुशी में इतना उतावला था कि मुझे रुमाना की आंखों में आंसू भी नज़र नहीं आए, और मैं फ्रांस वापस आ गया। हम अपनी भाग-दौड़ भरी ज़िंदगी से तंग आकर कितना भी इसे छोड़ना चाहें पर ऐसा कर नहीं पाते। मैं जिस अवसाद और मायूसी के साथ मिलान छोड़ कर गया था। मेरे हिमालय के जंगलों में बीते कुछ वक़्त ने उसे हील कर दिया था या फिर रुमाना के साथ ने मेरे अंदर की सारी कड़वाहट को धो दिया था। मैं ख़ुश था बिना यह जाने कि मैं अपने पीछे किसी की ज़िंदगी बर्बाद कर आया था। मेरे बाद रुमाना का क्या हुआ होगा? मैंने एक मर्तबा भी यह जानने की कोशिश नहीं की थी। मैं जिन लोगों को छोड़कर हिमालय गया था आख़िर मैं भी तो उनके जैसा ही था। रुमाना मेरे लिए पहली लड़की नहीं थी, जिसके नज़दीक मैं गया था। मेरे जीवन में बहुत सारी लड़कियां रही थी। जिनके साथ मैं हमबिस्तर हुआ था, वह भी बिना किसी नैतिक बोझ के। पर मुझे सोचना चाहिए था कि रुमाना उनसे अलग थी। इस बात का अहसास मुझे तब हुआ जब हैनरी दुबारा इंडिया होकर आया। इस बीच शायद 2-3 साल गुज़र चुके थे। मुझे रुमाना की याद अक्सर आती। वो मेरे सपनों में आया करती तो मन करता कि एक बार इंडिया फिर से हो कर आऊं। पर वक़्त ने मुझे कभी मोहलत ही न दी। इंडिया से वापसी पर जब हेनरी मुझसे मिलने आया तो पुरानी यादें ताज़ा हो गईं। बातों-बातों में बात निकल आई रुमाना की, हेनरी ने जो मुझे बताया, उसे सुन मेरी रूह कांप गई। हेनरी ने बताया कि वह जो लड़की थी रुमाना, उसके साथ बड़ा बुरा हुआ, वह मलाना गांव से थी। तुम्हारे साथ रहने के बाद गांव वालों ने उसे बिरादरी से बाहर निकल दिया। उनके लिए वह अशुद्ध हो गई थी। उसकी एक बूढ़ी मां थी, फिर पता चला कि वह प्रेग्नेंट थी। उसने बड़े कष्ट उठाए। उसका कोई सहारा न था। वही अपने परिवार का पेट जंगल में जड़ी बूटी ढूंढकर पालती थी। उसकी मां को आंखों से कम दिखाई देता था और भाई अपाहिज था। उसने बड़ी मुसीबत से एक बच्ची को जन्म दिया। गांव की पंचायत ने उन्हें

गांव से बाहर निकाल दिया। बच्ची को जन्म देने के बाद ही से रुमाना घर चलाने के लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ी। उसके पूरे परिवार ने बहुत बेइज़्ज़ती का सामना किया। पूरे समाज ने उनसे नाता तोड़ लिया। अब वह लोग गांव के बाहर एक झोंपड़ी बनाकर रहते हैं और जैसे-तैसे गुज़ारा करते हैं।

हेनरी को यह मालूम नहीं था कि रुमाना ने जिस बच्ची को जन्म दिया था वह मेरी बच्ची थी। पर मुझे सब याद आ गया था। मेरे दिल मुझे कोस रहा था। जिस इंसान ने मेरी जान बचाई, मुझसे बिना मतलब के प्यार किया मैं उसे किस आग में झोंक आया और पलटकर उसकी एक बार ख़बर भी न ली। मैं अपने आसपास के लोगों को जिन बातों के लिए लानत देता रहता था, आज मैं भी तो वही कर रहा था। एक बार भी नहीं सोचा कि मेरे पीछे रुमाना ने क्या क्या सहा होगा? मैं बेचैन हो उठा। एक ओर जहां रुमाना के साथ जो कुछ हुआ उसकी टीस थी वहीं दूसरी और मेरे एक बेटी भी है इस बात की ख़ुशी भी हो रही थी। मैं पंख लगाकर उड़ जाना चाहता था। रुमाना और उसके साथ बिताए प्यार के वे पल मेरे अंदर ताज़ा हो गए थे। मैंने आनन-फानन में इंडिया जाने का इंतिज़ाम किया। मैं यह सोचकर इंडिया जा रहा था कि अब मैं रुमाना को और मुसीबतें उठाने नहीं दूंगा। मैं उसे अपने साथ मिलान लेकर आऊंगा। मुझसे जो अनजाने में पाप हुआ है मैं उसका प्राश्चित करूंगा।

मैं अगले कुछ ही दिनों में इंडिया में था। मैं रुमाना और अपनी बच्ची से मिलने के लिए बेचैन था लेकिन वक़्त था कि काटे नहीं कट रहा था। मैं मलाना गांव पहुंचा ही था कि मुझे नंदू मिल गया, मैंने उसे रुमाना के बारे में पूछा। उसने सिर्फ़ इतना ही कहा कि बहुत जल्दी आ गए साहब। मैं उसकी बात नहीं समझा। वह मुझे रुमाना के घर ले गया। रुमाना बिस्तर पर पड़ी थी वह बेहद कमज़ोर हो चुकी थी। मैं उसे पहचान ही नहीं पाया। यह वह रुमाना नहीं थी जिसे में छोड़कर गया था। वह तो एक हंसता हुआ एक फूल थी। आज मेरी वजह से ही उसकी यह हालत हुई है। मुझे देखकर वो जैसे ज़िंदा हो गई हो। उसकी क्या हालत हो गई। मैं उसका हाथ पकड़कर फूट-फूट कर रो पड़ा। यह मुझसे क्या हो गया। मैंने रुमाना को किस हाल में पहुंचा दिया था। उसने हाथ से पास में बिस्तर पर सोई हुई बच्ची की तरफ़ इशारा किया। मैंने एक नज़र उस बच्ची को देखा। मैं ख़ुद को रोक नहीं पाया और उस बच्ची को गोद में उठा लिया। बच्ची नींद से जाग गई। उसकी नींद अभी कच्ची थी इसलिए रोने लगी। वह रोते हुए वैसे ही मुंह बिसूर रही थी जैसे कि बचपन में मैं बिसूरता था। वह मेरी ही बच्ची थी। मैंने रुमाना को दुखों के सिवाय कुछ नहीं दिया था और उसने मुझे जब भी दिया ख़ुशी ही दी। रुमाना की मां भी वहीं थी। वह एक कमज़ोर और बूढ़ी महिला थी। मैं रुमाना को अपने साथ लाना चाहता था पर उसका वक़्त पूरा हो चुका था। ईश्वर ने मुझे इतनी मोहलत भी नहीं दी कि मैं अपनी भूल का प्रायश्चित कर पाता। रुमाना को उसके हिस्से की ख़ुशी दे पाता। मैं उसे बचा न सका। शायद मेरी नाज़ुक-सी रुमाना इतने कष्ट झेल न पाई। रुमाना ने मेरे हाथों में दम तोड़ दिया। और मैं मजबूर और लाचार बना कुछ नहीं कर पाया। मैं एक बड़ा डिज़ाइनर था,

मेरे पास नाम था, पैसा था, इज़्ज़त थी, पर मैं क्या कर पाया? मुझे उस दुनिया से नफ़रत हो गई जिसमें खोकर मैं अपनी रुमाना को भूल गया था। रुमाना ने मुझे प्राश्चित करने का एक मौक़ा भी नहीं दिया। पर मेरे पास एक मौक़ा था। रुमाना की मां बूढ़ी और भाई शारीरिक रूप से अपाहिज और बेसहारा थे। मैंने फ़ैसला किया कि मैं मिलान वापस नहीं जाऊंगा। यहीं रहकर इन लोगों की सेवा करूंगा और हिमालय में भटके हुए लोगों की वैसे ही मदद करूंगा जैसे रुमाना ने कभी मेरी की थी।"

"मैम आप कह रही थीं कि मैं इस जंगल को इतनी अच्छी तरह से कैसे जानता हूं? इस जगह को मैंने रुमाना के साथ देखा है। उसके साथ जिया है। जिस जगह अपने किसी के साथ प्रेम के पलछिन बिताए हों वह जगह आप कभी नहीं भूलते।

देवदार के इन ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के बीच आंख मिचोली करते हुए प्रेम के उन पलों को जिया है। इसलिए मैं इस जंगल को इतनी अच्छी तरह जानता हूं।"

मैं डेविड की कहानी सुन हैरान थी। ऐसे भी लोग होते हैं दुनिया में जो प्यार के लिए अपना सब कुछ छोड़ देते हैं। हम बातों-बातों में ही गांव तक पहुंच गए थे। सामने दुनिया का प्राचीनतम गांव मेरे सामने था। मैंने आज तक इस गांव से जुड़ी जितनी भी कहानियां सुनी थी उन में डेविड की कहानी सबसे अलग थी। मैं समझ नहीं पाई कि इस गांव का आकर्षण था जो मुझे इतनी दूर खींच लाया था या फिर डेविड की प्रेम कहानी का। एक ऐसी प्रेम कहानी जो भाषाओं से समाज से, धर्म से नस्ल से परे थी।

अनुराग

स्टडी रूम में गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। डाक्टर रोहित वर्मा के लिए यह घर का सबसे सुकून भरा हिस्सा है। किताबों के नज़दीक रहना उनको बचपन से ही ख़ूब भाता है। कहते हैं किताबें सच्ची दोस्त होती हैं। आपके जीवन में वह हमेशा साथ देती हैं। दोस्त तो मिलते और बिछड़ते रहते हैं सिर्फ़ किताबें ही ऐसी होती हैं जो हमेशा आपका साथ निभाती हैं और चुपचाप घर के किसी कोने में रखी अलमारी के शैल्फ पर पड़ी आपका इंतज़ार किया करती है ख़ामोशी से। कब आपको उनकी सुध आए और उठाकर खोल लें और पढ़ लें। बिना किसी शिकवे-शिकायत के आपकी सेवा में हाज़िर। डॉक्टर वर्मा की एक आदत थी, वह कब पड़ी, कुछ याद नहीं। शायद बचपन में उन्होंने कहीं पढ़ा था किसी पत्रिका में, 'जब आप कपड़े मांग कर नहीं पहनते, खाना मांग कर नहीं खाते तो

किताबें मांग कर क्यों पढ़ते हैं?' यह बात उनके दिल को छू गई थी। तभी से शायद उनके मन में अपनी बड़ी-सी लाइब्रेरी बनाने का सपना घर कर गया था और उस सपने को पूरा करने में उनकी पत्नी जया ने भी पूरा सहयोग किया। दोनों को ही किताबें पढ़ने का शौक़ जो था। उन दोनों की शॉपिंग लिस्ट में किताबों की शॉपिंग सबसे ऊपर होती। जया और रोहित जब अपना घर बनाने की प्लानिंग कर रहे थे तो एक बड़े से रूम को स्टडी बनाने का प्लान किया था। एक ऐसी जगह जहां दोनों बैठ कर गरमा-गर्म कॉफ़ी के साथ अपनी पसंद की किताबें पढ़ सकें। घर बना और साथ ही स्टडी भी बनी, जया ने स्टडी को सजाने में कोई कसर बाक़ी न रखी। यार दोस्तों में जया और रोहित के स्टडी रूम को बहुत सराहा जाता। पर जिसने इसे बनाया अब वही रोहित का साथ छोड़ गई। आज एक सुंदर स्टडी है और ढेर सारी किताबें भी हैं, पर नहीं है तो वह साथिन जिसके साथ रोहित ने यहां बैठकर किताबें पढ़ने के सपने संजोये थे।

"मालिक बीबी जी को होश आ गया है।"— रामू काका ने मुझे स्टडी में आकर बताया।

"जाओ जाकर मां को बता दो, मैं अभी आता हूं।" रोहित ने हाथ में पकड़ी किताब में बुकमार्क लगाया और बंद कर वापस शैल्फ में रख दी। गैस्ट रूम में हल्की रौशनी फैली हुई थी। डॉक्टर वर्मा ने कमरे में घुसते हुए सामने दीवार पर लगी घड़ी पर नज़र डाली। घड़ी में रात के दो बजे थे। मां भी पीछे-पीछे आ गई थीं। डॉक्टर वर्मा ने बिस्तर पर पड़ी उस दुबली-पतली महिला को देखा। आहिस्ता से उसकी नब्ज़ चेक की, ब्लडप्रेशर नापा। अब वह धीरे-धीरे सामान्य होती जा रही थी। जिस घड़ी वह डॉक्टर वर्मा को सड़क पर बेहोश पड़ी मिली थी तब उसका ब्लडप्रेशर बहुत बढ़ा हुआ था, हाईवे पर आस-पास कुछ न था। क्या करते, उसे छोड़कर भी तो नहीं आ सकते थे। मां साथ ही थीं। मां ने कहा इसे उठाकर घर ले चलते हैं। पता नहीं किस मुसीबत की मारी है बेचारी। रास्ता चलते लोगों की मदद करना मां का स्वाभाव था और डॉक्टर वर्मा में यह गुण शायद अपनी मां से ही आया था। उस वक़्त वह कुछ बताने की स्थिति में नहीं थी। डॉक्टर वर्मा ने उसे दवाई की एक और ख़ुराक दी और नर्स को हिदायत देकर अपने रूम की तरफ़ बढ़ गए। सुबह होने तक कुछ फ़ैसला नहीं लिया जा सकता था।

वह कौन है?

कहां से आई है?

क्या करती है?

उसके साथ क्या हुआ? बड़े सारे सवाल थे जिनका जवाब नहीं था। अगले दिन सुबह उसकी हालत काफ़ी बेहतर थी। डॉक्टर वर्मा ने देखा तो मां उसे नाश्ता खिला रही थीं। नाश्ते से फ्री होकर वह डॉक्टर वर्मा के सामने बैठी थी। एकदम शांत। डॉक्टर वर्मा ने उससे पूछना शुरू किया। पर उसे अपने नाम के अलावा कुछ भी याद नहीं। वह कहां से आई है? क्या हुआ था उसके साथ? कुछ भी याद नहीं। बहुत पूछने पर उसने एक नाम लिया —अनुराग

“अनुराग?”

“कौन है अनुराग?”

“डॉक्टर साहब वह मेरे लिए सब कुछ है। मैं उनके बिना जी नहीं सकती। वह मेरी आत्मा है। मैं तो बस एक शरीर हूं। जिस तरह बिन बाती दीया होता है, उसी तरह उसके बिना मैं बेकार हूं।” उसकी आंखों से अविरल अश्रु धारा फूट पड़ी।

“डॉक्टर मैं उसे देख-देखकर जीती हूं। मैंने उसके लिए सारे ज़माने की बुराई तक ले ली।” वह मुझसे ऐसे बता रही थी कि मानो अनुराग ही दुनिया का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हो।

“वह रहता कहां है?” मैंने मदद करने की गरज़ से पूछा।

“यहां मेरे दिल में” उसने अपना हाथ अपने ह्रदय पर रखते हुए कहा। उसके जवाब में करुण वेदना थी।

“उसकी उम्र कितनी है?” मैंने उसके विषय में और अधिक जानने की उत्सुकतावश पूछ लिया।

“क्या उसे नज़र लगाओगे उम्र पूछकर?” वह जोकि अब तक पूरी सभ्यता से बात कर रही थी, अचानक क्रोधित हो उठी। मैं समझ गया कि केस बहुत ही कॉम्प्लिकेटेड है। इतनी आसानी से समझ में आने वाला नहीं है। यह सोचकर मैं हॉस्पिटल के लिए निकल पड़ा और उसे घर पर ही रहने दिया। अभी तक मैं यह फ़ैसला नहीं कर पाया था कि उसे हॉस्पिटल में रखूं या फिर घर पर। मां का कहना था की उसे घर ही पर रखा जाए। वैसे भी वह अजीब तरह की पागल थी। एक डॉक्टर के नाते भगवान ने मुझे दया तो वरदान स्वरूप दे ही रखी थी। यही दया इस पर भी आ गयी थी।

निसंदेह, वह एक अनुपम सौंदर्य की मलिका थी। उम्र लगभग 25 वर्ष। सुवर्ण, कमर से नीचे केश। लंबा डील-डौल। कुल-मिलाकर अप्सराओं को मात देता सौंदर्य! मां ने भी उसकी बहुत देखभाल की। होश आ जाने पर भी उसके मुंह पर एक ही नाम था ‘अनुराग’। मुझे अब इस नाम से चिढ़-सी होने लगी थी। वह जिसे इतना चाहती है, उसने लौटकर भी उसे ढूंढने का प्रयास नहीं किया। परेशानी यह थी कि इतनी कोशिशों के बाद भी यदि उसके विषय में कुछ जानकारी हासिल कर पाया था तो बस यह की उसका नाम अनुराग है। इसके आगे कुछ बताने को वह राजी ही न होती। “वह कहां रहता है? क्या करता है?” वह इसका जवाब ही नहीं देती। बस बताती तो सिर्फ़ अपने और उसके बीच का प्रेम संबंध, कि वह उसे कितना चाहती है। उसे कितना प्यार करती है। उसके लिए अपनी जान भी दे सकती है। जिसे सुन मुझे इस प्रेम की देवी पर तरस आने लगता। साथ-साथ उसके प्रति उत्सुकता बढ़ती जाती। मैं उससे घंटों बात करता। धीरे-धीरे वह मुझसे घुलने-मिलने लगी थी। लेकिन उसकी हर बात अनुराग से शुरू होकर अनुराग पर ही ख़त्म हो जाती। मैं भी उसे अब एक चुनौती के रूप में ले रहा था। वह मेरे अब तक के जीवन का सबसे पेचीदा केस थी। वह और पागलों की तरह न चीख़ती थी, न चिल्लाती थी। अगर उसमें पागलपन का कोई लक्षण था तो बस यह कि वह कभी-कभी फूट-फूटकर रो पड़ती या फिर बहुत गुमसुम बनी रहती। यही लक्षण केस को विलक्षण बना

रहे थे। कभी-कभी तो वह अपने व अनुराग के अंतरंग संबंध तक मुझसे बिना किसी लाग लपेट के कह डालती। मैं पसीने-पसीने हो जाता। माना कि वह अपने होशो-हवास में नहीं है, पर मैं तो अपने पूरे होश में हूं!

एक रात मैं स्टडी रूम में बैठा पढ़ रहा था कि वह न जाने कब मेरे पास आकर बैठ गयी। मैंने पूछा, "क्या बात है नींद नहीं आ रही?"

"नहीं डॉक्टर, अनुराग की याद आ रही है।" उसने फिर से अपने अंदाज़ में आहिस्ता से जवाब दिया।

"जाओ, जाकर सो जाओ" मैंने लगभग उसे वहां से भेजना चाहा।

"कैसे सो जाऊं? मुझे उसके बिना नींद नहीं आती। जबसे वह मेरे जीवन में आया है तब से वह एक दिन भी मुझसे अलग नहीं सोया। वह मेरी बांहों में समां जाता था और मुझे पूरे जहान का सुख मिल जाता था।" वह बोली। पर मुझमें इससे अधिक सुनने का साहस नहीं था। मैं 'बस-बस' कहकर उसे उसके कमरे तक छोड़ आया। आख़िर मैं भी एक जवान मर्द था। वह भी जब की उसकी पत्नी शादी के ठीक एक वर्ष बाद ही दुनिया छोड़ गयी हो। लेकिन, मैं एक चरित्रवान व्यक्ति था। मगर यह भी जानता था कि नारी अच्छे-अच्छों की तपस्या भंग कर देती है। वह तो अपने होश में नहीं थी, पर मैं तो पूरे होशो-हवास में था। उसके अंदर तो प्यार का समंदर हिलोरे मार रहा है। इसलिए किनारे बैठना भी ठीक नहीं है। न जाने कौन-सी लहर बहा ले जाए।

इधर कुछ दिनों से सुकन्या में बड़े अजीब से परिवर्तन होने लगे थे। वह सोते-सोते बड़ी तेज़ी से चौंक जाती थी और फिर चीख़ मारकर बेहोश हो जाती थी। मुझे अब उसकी कहीं ज़्यादा चिंता होने लगी थी। उससे मेरे कोई सबंध न था। पर अपनाईयत तो थी ही।

सुकन्या की हालत सुधरने के बजाय अब बिगड़ने लगी थी। मां ने समझाया— "रोहित तुम जितनी कोशिश कर सकते थे तुमने की पर अब यह ज़रूरी है कि सुकन्या को अस्पताल में भर्ती करवा दिया जाए। मैं जानती हूं तुमको उसकी बहुत चिंता है पर हम इससे ज़्यादा और कर भी क्या सकते हैं। उसका पता अगर मालूम होता तो उसके घर वालों को भी ढूंढकर ख़बर पहुंचा ही देते।"

"मां, क्या आपको नहीं लगता कि सुकन्या की बीमारी केवल मानसिक नहीं है। उसके लक्षण किसी गंभीर बीमारी का संकेत दे रहे हैं। आप तो जानती ही हैं कि सरकारी मानसिक रोग अस्पतालों में बेसहारा मरीज़ों की देखभाल कैसी होती है। उसपर अगर मरीज़ किसी और भयंकर बीमारी से पीड़ित हो तो और मुसीबत।" मैंने मां को समझाने की कोशिश की।

मां मेरी बात से सहमत थीं, वह ख़ुद भी एक डॉक्टर थीं इसलिए इन बातों को अच्छी तरह समझती थीं। मां ने कहा— "तुम ठीक कहते हो। ऐसा मुझे भी महसूस होता है। तुम सुकन्या के सारे टेस्ट करवाओ पहले, आगे क्या करना है इसका फ़ैसला टेस्ट रिपोर्ट के आने पर करेंगे।"

अगले ही दिन मैं सुकन्या को लेकर अपने एक मित्र के पास गया। वह शहर के बड़े

डॉक्टर थे। मैंने सारी बात उनको बता दी। उन्होंने सुकन्या का चैक-अप किया और टेस्ट लिख दिए। टेस्ट करवाने में पूरा दिन निकल गया। सुकन्या भी काफ़ी परेशान हो गई थी। कई दिन इस उलझन में बीत गए कि रिपोर्ट में क्या आएगा। मैंने दोनों हाथ जोड़ भगवान से दुआ मांगी।

"भगवान मेरे अनुमान को ग़लत साबित करना। वह बीमारी न निकले जिसका मुझे अंदेशा हो रहा है।" आज टेस्ट की रिपोर्ट आई तो में एक दम सुन्न पड़ गया। सुकन्या को कैंसर हुआ था। मैं और मां मजबूर थे। अब तो सुकन्या को अस्पताल में भर्ती करवाना ही पड़ेगा।

हारकर मैंने उसे हॉस्पिटल में भर्ती कर दिया। अचानक उसे दौरा पड़ा था। वह बेहोश थी। पर उसके मुह से सिर्फ़ 'अनुराग' ही निकल रहा था। उसकी हालत बहुत गंभीर होती जा रही थी। उसकी हालत देखकर में परेशान हो उठा। अनायास मेरे मुंह से निकल गया, "इतनी अच्छी इंसान का इतना बुरा अंत।" मैं रिपोर्ट पढ़ रहा था। यह उसकी कैंसर की लास्ट स्टेज थी। वह क्या सोचती थी? मैं यह अच्छी तरह जानता था। मैंने तय किया कि मैं अनुराग को ढूंढ निकालूंगा। उसे इतनी आसानी से मरने नहीं दूंगा। फिर क्यों न इसके लिए मुझे ज़मीन और आसमान एक करने पड़ें। कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। मां मुझे चिंता में डूबा देख परेशान हो उठीं। "कोई तो रास्ता होगा रोहित? जिससे हम उसके घरवालों तक ख़बर भेज सकें।"

"हां, मां एक रास्ता है। क्यों न हम अख़बार में सुकन्या के फ़ोटो के साथ इश्तिहार निकलवा दें, शायद इसके ज़रिये हम अनुराग तक पहुंच जाएं।" मुझे ख़्याल आया।

उसी समय मैंने अख़बार में अनुराग के बारे में एक इश्तहार छपवाने भेज दिया। सुकन्या की तस्वीर भी इश्तहार में निकलवा दी। साथ ही यह भी निकलवा दिया कि अनुराग तुम जहां कही भी हो अपनी सुकन्या को अंतिम बार देख जाओ, वह तुम्हे देखे बिना मर नहीं पा रही है।"

मैं और मां बारी-बारी से अस्पताल के चक्कर लगा रहे थे। सुकन्या का इलाज लगातार हो रहा था पर उस पर दवाइयों का असर नहीं हो रहा था। लगता था जैसे वह जीना ही नहीं चाहती हो। दो दिन गुज़र चुके थे। अब सुकन्या का होश जा रहा था। न ही अनुराग की कोई सूचना मिली थी। मेरे सारे प्रयास असफल साबित हो रहे थे। मैं असहाय सुकन्या की सांसों की डोर टूटने का इंतज़ार कर रहा था। तभी वार्ड बॉय ने किसी के आने की सूचना दी। मैंने तुरंत उसे अंदर बुलवा लिया। आने वाला 34-35 वर्ष का एक युवक था। उसके साथ में एक 4-5 साल का बच्चा भी था। युवक के हाथ में इश्तहार वाला अख़बार था और वह सुकन्या के बारे में पूछ रहा था। बच्चे को देखकर मैंने अंदाजा लगाया, "अनुराग ने शायद शादी कर ली!" पर इस समय मुझे यह सब बातें छोड़ सुकन्या का जीवन बचाने की सोचनी चाहिये। मैंने अपने विचारों को झटका। मैंने सुकन्या के कान में धीरे से कहा,-"सुकन्या देखो तुम्हारा अनुराग आया है" सुकन्या ने तुरंत आंखें खोल दी। जैसे वह यह शब्द सुनने के इंतज़ार में हो। इतने में वह बच्चा दौड़ कर सुकन्या से

लिपट गया। सुकन्या के हाथ कांप रहे थे। वह कुछ बोल नहीं पा रही थी, पर वह उसे बेतहाशा प्यार कर रही थी। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि यह माजरा क्या है? आख़िर, अनुराग का बेटा क्यों सुकन्या से इस तरह से लिपट रहा है और अनुराग खड़ा-खड़ा उसका मुंह क्यों देख रहा है?

"मेरे बेटा... मेरे लाल अनुराग!" सुकन्या के मुख से बड़ी मुश्किल से निकला। पहले तो मैं कुछ समझा नहीं, लेकिन धीरे-धीरे सब समझ में आ गया। "तो क्या आज तक सुकन्या, जिसके बारे में मुझसे बातें करती थीं, वह एक छोटा बच्चा था!" मेरे मुंह से अचानक निकल ही गया।

"हां डॉक्टर साहब, सुकन्या ने ही अनुराग को पाला है। यह हमारे पड़ोस में रहती थी। अनुराग तीन दिन का था कि तभी इसकी मां चल बसी। मैं बच्चे की देखभाल नहीं कर पा रहा था। इत्तिफ़ाक़ से मेरे भी कोई नहीं था अनुराग के सिवा। पर उस समय अनुराग को पिता की नहीं मां की ज़रूरत थी। सुकन्या को तो बच्चों से पहले ही बहुत लगाव था, इसीलिए वह अनुराग को रोता नहीं देख सकी और ज़बरदस्ती उसे मेरी गोद से छीन ले गयी। तब से अब तक अनुराग की देखभाल और परवरिश सुकन्या ने ही की है। यह समझ लें कि सुकन्या ने अनुराग को बस जन्म ही नहीं दिया, बाक़ी वह सब कुछ किया जो एक मां करती है। इसकी ख़ातिर तो सुकन्या ने शादी तक नहीं की। परिवार और समाज की बुराई भी ली। पर डॉक्टर साहब मैं कितना स्वार्थी इंसान हूं। यह सोचकर कि अनुराग तो पूरी तरह से सुकन्या का हो चुका है और मुझसे कहीं मेरे बेटा न छिन जाए, मैं सुकन्या से अनुराग को ज़बरदस्ती छीन लाया। डॉक्टर साहब, यह सदमा वह बर्दाश्त नहीं कर पायी और अपना दिमाग़ी संतुलन खो बैठी। डॉक्टर साहब, मैं गुनहगार हूं। मेरे ही कारण आज उसकी यह दुर्दशा हुई है।" अनुराग का पिता फूट-फूटकर रो पड़ा। और मैं अब अपने पर पछता रहा था कि मैं क्या-क्या सोचता रहा? हम हमेशा प्रेम को स्त्री-पुरुष, प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम तक ही सीमित क्यों समझते हैं? यह तो प्रेम का बहुत ही गौड़ रूप है। प्रेम की विशालता इससे कहीं बड़ी है। हमारी संकीर्ण मानसिकता शायद प्रेम को विशाल रूप में देख ही नहीं पाती है।

"डॉक्टर साहब, मैंने बिना प्रसव पीड़ा सहन किए मातृत्व सुख प्राप्त किया है। मुझे इस नन्ही-सी जान ने चार-पांच वर्षों में जीवन भर की ख़ुशियां दे दी थी। मैं इसकी मां तो नहीं थी, पर मां से कम भी नहीं थी। मैंने इसके लिए कितनी ही रातें जागकर गुज़ारी हैं। जब यह मेरे सीने पर सिर रखकर सो जाता तो मुझे सारे जहां का सुख मिल जाता। डॉक्टर साहब, मैं पागल हूं... इसके प्रेम में पागल हूं। अब इसे देखने के बाद मुझे जीवन से कुछ नहीं चहिए।"

मैं जड़वत उसे एकटक देखे जा रहा था और वह बोले जा रही थी। उसने अनुराग को कलेजे से चिपकाते हुए कहा, "डॉक्टर साहब, प्रेम तो ऐसी भावना है जो किसी के साथ भी जुड़ सकती है। यह है अनुराग मेरे बेटा... मेरी जान... मेरे सब कुछ। डॉक्टर प्रेम केवल प्रेमी-प्रेमिका की जागीर नहीं है। यह तो प्रेम का बहुत गौड़ रूप है। इसके आगे भी

बहुत कुछ है।”

इतना कह कर सुकन्या ने गर्दन एक ओर डाल दी। वह तो यह दुनिया छोड़कर जा चुकी थी। पर मुझे आईना दिखा गयी थी कि आज भी हमारी सोच कितनी संकीर्ण है। उसका प्रेम तो महानता की सारी सीमाएं लांघकर उसकी ही तरह अमर हो चुका था।